जुलाई 2020
वर्ष 84 । अंक 7 । ₹-18 प्रति । ₹-220 वार्षिक
अखण्ड ज्योति
www.awgp.org
5 कोरोना के बाद क्या ?
17 जागृत हो रहा है युवा भारत
28 टीमवर्क की महत्ता
46 सुखदुःख के विविध रंग

गुरु पूर्णिमा-संदेश

5 जुलाई 2020

आदर्शों के हिमालय पर विराजमान हमारे सद्गुरु-ज्ञान के महासागर एवं वेदमूर्ति को इस गुरु पूर्णिमा पर्व पर शत शत नमन। उन्हीं के लिए यह जीवन हमारा खप जाय। कालनेमि की माया हमें या किसी को भी छूने न पाये, हम आज उनसे यही शक्ति माँगते हैं।

-शान्तिकुञ्ज

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी,पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

संस्थापक- संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ. प्रणय पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी,मथुरा
दूरभाष नं. (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल न. 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
फैक्स नं. (0565) 2412273
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक
वर्ष : 84 । अंक : 07
जुलाई: 2020
आषाढ़- श्रावण : 2076
प्रकाशन तिथि : 01.05.2020
वार्षिक चंदा
भारत में : 220/- `
विदेश में : 1600/- `
आजीवन (बीस वर्षीय)
भारत में : 5000/- `

भाग्यविधाता

मनुष्य को यह अधिकार सदा से प्राप्त है कि वह मनचाहे विचारों को आकर्षित करे व उनके अनुरूप कर्म करे। कर्म करने की स्वतंत्रता मनुष्य को पूर्ण रूप से है; मात्र उनके परिणाम के चयन का अधिकार नहीं है। मनुष्य को स्वकृत शुभ कर्मों के शुभ फल एवं अशुभ कर्मों के अशुभ फल स्वीकार करने ही पड़ते हैं। इस व्यवस्था में व्यतिक्रम स्वयं विधाता के लिए नहीं होता तो ऐसी आकांक्षा, अन्य किसी के मन में पनपने पर दुःख के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं हो सकता।

परिणाम जैसा भी मिले, सत्य यही है कि कर्मों के चयन का स्वतंत्र अधिकार मनुष्य को है। ऐसे ही सृष्टि के माया-प्रपंच में फँसने का, विषरूपी विषयों की जंजीरों में जकड़ने का चयन भी मनुष्य स्वयं ही करता है। इस हेतु माया, प्रारब्ध, असुर, ग्रह-नक्षत्र, टोने-टोटके इत्यादि को दोष देना, अनर्गल प्रलाप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। भवबन्धनों में बँधने का कार्य हम स्वयं करते हैं और इसलिए इनसे मुक्त होने का मार्ग भी हमारे सम्मुख वैसे ही खुला है, जैसे बँधने का था।

मकड़ी का बुना जाला उसकी स्वयं की कृति है। जिस जाल में रेशम का कीड़ा फँसता है, उसका जन्म उसी के मुख से हुआ होता है। जिस हड्डी को चबाने से कुत्ते के मुख से रक्त निकलता है, वह कोई उसकी दाढ़ों में जबरन नहीं डालता। जिस विधि फँसने के, उलझने के सरंजाम जुटाए जाते हैं-उसी विधि से मुक्त होने की व्यवस्था भी बनायी जा सकती है। इन्द्रियसुख की लिप्सा व लालसा मनुष्य करता है तो उस व्यभिचार से उत्पन्न रोग-शोक-पतन के जाल से कैसे बचा जा सकता है? उनसे बचने के लिए तो प्रारंभ में ही सही मार्ग का चयन कर लेना उपयुक्त है; ताकि जीवन की दिशा सही बनायी जा सके।

परमात्मा ने मनुष्य को अनगिन विभूतियों व असंख्य सम्पदाओं से सुसज्जित करके भेजा है। सही समय पर उठाए गए सही कदम, जीवन की सही दिशा का निर्धारण करते हैं। अतः इस बहुमूल्य जीवन को पीड़ा-पतन के बन्धनों में बाँध कर गुजारने के स्थान पर परिष्कार व प्रभुत्व के मार्ग पर ले चलना ही श्रेयस्कर है। यह चयन आज ही कर लेना उपयुक्त है; क्योंकि हम स्वयं ही अपने भाग्यविधाता हैं।

❑

विषय सूची

आवरण पृष्ठ परिचय- प्रखर प्रज्ञा एवं सजल श्रद्धा की पृष्ठभूमि में हमारी गुरुसत्ता

जुलाई 2020 व अगस्त 2020 के पर्व-त्यौहार

वार	तिथि	पर्व	वार	तिथि	पर्व
बुधवार	01 जुलाई	देवशयनी एकादशी	शुक्रवार	07 अगस्त	बहुला चौथ
रविवार	05 जुलाई	गुरु पूर्णिमा	मंगलवार	11 अगस्त	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
गुरुवार	16 जुलाई	कामिका एकादशी	शनिवार	15 अगस्त	स्वतन्त्रता दिवस/
सोमवार	20 जुलाई	सोमवती अमावस्या			अजा एकादशी
शनिवार	25 जुलाई	नाग पंचमी	मंगलवार	18 अगस्त	कुशाग्रहणी अमावस्या
सोमवार	27 जुलाई	तुलसी जयंती	शुक्रवार	21 अगस्त	हरितालिका व्रत
गुरुवार	30 जुलाई	पवित्रा एकादशी	शनिवार	22 अगस्त	श्रीगणेश चतुर्थी
सोमवार	03 अगस्त	रक्षाबन्धन	शनिवार	29 अगस्त	जलझूलनी एकादशी

यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। - संपादक

कोरोना के बाद क्या?

एक ऐतिहासिक और अभूतपूर्व वैश्विक संकट के साक्षी हम सब अभी कुछ दिनों पहले ही बन चुके हैं। चीन के वुहान प्रांत से प्रारंभ हुए कोरोना वायरस के संक्रमण ने देखते-देखते संपूर्ण विश्व को अपनी गिरफ्त में ले लिया। 31 दिसंबर 2019 को पहली बार चिकित्सकों की दृष्टि में आए इस वायरस के लिए न तो इंसानों के शरीर में कोई पूर्व से स्थापित इम्युनिटी थी, न इसका कोई वैक्सीन उपलब्ध था और न ही इससे बचने के लिए कोई विशेष दवाई या उपचार ही उपलब्ध था। इसकी संक्रमण दर या ट्रांसमिशन रेट अत्यधिक ज्यादा होने के कारण देखते-देखते देश, महाद्वीप इसके शिकार बनते गए और अनेक देशों को न केवल अपनी सीमा बंद करनी पड़ीं बल्कि लगभग कर्फ्यू जैसी परिस्थितियों को लागू करने के लिए विवश भी होना पड़ा।

कोरोना वायरस; वायरसों की जिस उपप्रजाति का सदस्य है-वे सामान्य रूप से मनुष्यों के लिए हानिकारक नहीं होते हैं। इनकी उपलब्ध प्रजातियों में से 4 तो सामान्य तरह का जुकाम फैलाते हैं, जबकि 2 अन्य थोड़ा गंभीर बीमारियों; जैसे सार्स (SARS) एवं मर्स (MERS) को फैलाने का कारण बनते हैं। चूँकि कोविड-19 को फैलाने का कारण जो कोरोना वायरस था, वह कई दृष्टियों में सार्स के समान ही था। इसलिए वैज्ञानिकों ने इसे सार्स कोव-2 (SARS CoV-2) का नाम दिया। 11 फरवरी को विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) द्वारा इस वायरस द्वारा फैलायी जाने वाली बीमारी को CoViD-19 नाम दिया और 11 मार्च को इसे महामारी के रूप में घोषित किया-जिसका अर्थ यह था कि यह बीमारी संपूर्ण विश्व को अपनी गिरफ्त में ले चुकी थी।

कोविड-19 के विषय में अनेक बातें ऐसी थीं, जो लगभग अनूठी ही थीं। पहली तो यह कि यह एरोसोल के माध्यम से फैलने वाली बीमारी है अर्थात् यदि उस व्यक्ति ने जिसको बीमारी है, उसने किसी स्थान पर खाँसा तो उसके साथ वायरस उस वातावरण में निकल कर वहाँ की हवा में तीन घंटे के लिए रह सकता है।

इसके अतिरिक्त उन चीजों को छूने से जिन्हें उस व्यक्ति ने छुआ हो, जिसे इंफेक्शन रहा होगा- उन चीजों को छूने से भी इसका फैलना संभव है। चूँकि यह बीमारी उन लोगों के द्वारा भी फैलायी जा सकती है जिनको बीमारी का कभी कोई लक्षण न आया हो अर्थात् वे एसिप्टमेटिक रहे हों-इसलिए ये जान पाना बहुत मुश्किल हो जाता है कि बीमारी आयी किसके माध्यम से है और इसीलिए एक-दूसरे से दूर रहने के और सोशल डिस्टेंसिंग के निर्देश वैश्विक संगठनों द्वारा निर्गत किए गए और उनका ही पालन सर्वत्र किया भी गया। परिणामस्वरूप जो वैश्विक परिस्थितियाँ विनिर्मित हुईं, उनसे आज हम सभी परिचित हैं।

प्रश्न आज इस बात का उठता है कि कोरोना के बाद क्या? कोरोना वायरस के संपूर्ण विश्व पर पड़े भयानक प्रभाव ने एक मूलभूत प्रश्न को या चिंतन को जन्म दिया है कि क्या जैसा जीवन और जीवनशैली इस पेंडेमिक के उभरने से पूर्व थे, क्या हम उस तरह की जीवनशैली की ओर कभी लौट भी पाएंगे या नहीं? क्या अब की दुनिया में राजनीतिक एवं आर्थिक शक्तियों के समीकरण बदल जायेंगे? या कुछ दूसरे शब्दों में कहें तो क्या ये विश्व का, उस विश्व को जिसको हम जानते हैं-उसका अंत है अथवा यह एक नये तरह के विश्व की, मानवता की शुरुआत है?

इन प्रश्नों के उत्तर जब भी मिलें पर आज की तारीख में भी हम पर्यावरण एवं जैविक जगत पर पड़ने वाले प्रभावों को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। वेनिस की जलराशियों में डॉल्फिनें लौटने लगीं, हरकी पौड़ी पर गजराज घूमने लगे एवं चिड़ियों की चहचआहट वर्षों के बाद फिर से सुनाई पड़ने लगी। वे देश जो कभी एक-दूसरे से ढंग से बात भी नहीं करते थे, जैसे ईरान एवं सऊदी अरब- वो इस त्रासदी के समय में एक दूसरे की सहायता करते दिखे। फिलीपींस में एवं उड़ीसा में उग्रवादियों ने पहली बार युद्धविराम का पालन किया। ऐसा लगा कि इस संकट की घड़ी में मानवता एकजुट होने लगी।

ये तो कुछ वे उदाहरण हैं जो सकारात्मक परिवर्तन की ओर इशारा करते हैं पर साथ ही कुछ परिवर्तन ऐसे भी हैं, जिनके कारण मानवता के भविष्य को देख कर चिंता होती है। उदाहरण के तौर पर हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रो. स्टीफन वॉल्ट ने एक शोध आलेख के माध्यम से चिंता व्यक्त की है कि इस घटना के कारण कई देश अपने पुराने स्वरूप की ओर लौटना चाहेंगे एवं एकजुट मानवता का भाव पैदा करना मुश्किल होगा।

यूरोपियन यूनियन आज की तारीख में लगभग बिखरता सा नजर आता है। देशों के मध्य यात्रा करने पर गंभीर प्रतिबंध लगते दिखाई पड़ते हैं। इसके परिणामस्वरूप एक ऐसा विश्व बन सकता है, जो पहले की तुलना में कम मुक्त हो, कम धनी हो और कम स्वतंत्र हो। इसके कारण लोगों के स्वास्थ्य एवं ग्लोबल इकोनॉमी या वैश्विक अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव भी अत्यंत चिंताजनक हैं। स्टॉक बाजार से लेकर रोजगार पर एवं उभरती अर्थव्यवस्थाओं पर इसका जो प्रभाव पड़ा है-वह बिलकुल स्पष्ट है एवं गंभीर चिंताजनक भविष्य की ओर इशारा करता है। ये पंक्तियाँ लिखे जाने तक जनवरी से मार्च तक की अर्थव्यवस्था 12% से ज्यादा सिकुड़ चुकी थी एवं तेल का बाजार 60त्न से ज्यादा आघात झेल चुका था।

180 से ज्यादा देशों में फैली इस बीमारी के अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव संपूर्ण विश्व को प्रभावित करते नजर आते हैं। परिणामस्वरूप G-20 देशों को 5 ट्रिलियन डॉलर का सहयोग देने के लिए आगे आना पड़ा। सभी प्रमुख केंद्रीयकृत बैंकों को अपनी दरें कम करनी पड़ीं और एसेट खरीदारी के लिए जुटना पड़ा। इसके अतिरिक्त इसका जो प्रभाव रोजगार पर पड़ा वह भी बहुत चिंताजनक है।

देशों के लॉकडाउन में चले जाने से, ट्रांसपोर्ट एवं ट्रैवल के लगभग पूर्णतया रुक जाने से-बेरोजगारी की संख्या तेजी से बढ़ी। अप्रैल के प्रथम सप्ताह तक 30 लाख अमेरिकी एवं 10 लाख ब्रिटिश नागरिक बेरोजगारी भत्ते के लिए आवेदन डाल चुके थे। अकेले अमेरिका में प्रथम दो सप्ताह के अंदर ही 3 लाख के करीब रोजगार समाप्त हो चुके थे। यहाँ तक कि अमेरिकी सरकार द्वारा प्रदान की गयी ऐतिहासिक एवं विशाल 2 ट्रिलियन डॉलर की सहायता भी उक्त स्थिति को सुधारने में कम पड़ती नजर आ रही थी।

अफ्रीका के तेल उत्पादक देशों जैसे- अंगोला, घाना, गेबन एवं नाइजीरिया का डॉलरप्रभावित कर्जा इस कारण 20त्न तक बढ़ गया और इस कारण वहाँ संक्रमण के दर के बहुत ज्यादा न होने के बाद भी वहाँ की अर्थव्यवस्था बुरी तरह से प्रभावित होती नजर आयी। इसका प्रभाव निश्चित रूप से भारत की अर्थव्यवस्था पर भी बुरी तरह से पड़ा।

भारतीय बाजार के लगभग 55% इलेक्ट्रॉनिक्स चीन से आते थे, जो लगभग 40% पर सिमट कर रह गए। स्वाभाविक था कि इनके दाम बुरी तरह से प्रभावित हुए। इसके साथ ही भारत से कपास, रसायनों, मिनरल तेलों इत्यादि के निर्यात पर भी बुरा असर पड़ा। भारत के दवा निर्माताओं पर भी इसका कुप्रभाव पड़ा; क्योंकि भारत लगभग 60% API (Active Pharmaceutical Ingredients) चीन से आयात करता है इसीलिए दवाईयों के दाम भी बढ़ते नजर आए। विटामिन और पेनिसिलिन के दामों में पहले ही 50त्न से ज्यादा वृद्धि होती दिख रही थी। इसके साथ ही भारत के पर्यटन तंत्र एवं एवीऐशन इंडस्ट्री अत्यंत बुरी तरह से प्रभावित हुए और ये दोनों ही भारतीय जीडीपी में एक महत्त्वपूर्ण अंश की भागीदारी रखते हैं।

इन सारे परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए कई चिंतक कहते हैं कि कोरोना वायरस, ग्लोबलाइजेशन 2.0 को लेकर आया है। रॉबर्ट काप्लान जो यूरेशिया ग्रुप से हैं-वे कहते हैं कि कोरोना के बाद का विश्व नये वैश्विक विघटनों को लेकर के आ रहा है। विश्व भर में खाद्यान्नों का संकट गहराने के कारण देश अपनी-अपनी अर्थव्यवस्थाओं एवं अस्तित्व को लेकर लड़ते दिखाई पड़ सकते हैं। इसी के साथ यह भी संभव है कि वर्तमान चुनौती भारत को ये भी सिखाए कि हम स्वकेंद्रित अर्थव्यवस्था को ज्यादा से ज्यादा मजबूत बनाएँ; ताकि हमें भविष्य में ऐसे ही संकटों के समय मुश्किलों का सामना न करना पड़े।

गंभीरता से देखें तो वर्तमान संकट मानवता को परमपूज्य गुरुदेव के एकता, समता, शुचिता, ममता के सूत्र की याद दिलाता है। ऐसे संकट के क्षणों में ही यदि हम सम्मिलित प्रयास करें तो मानवता एकजुट हो करके उभर सकती है। वर्तमान वैश्विक परिस्थितियाँ कुछ ऐसे ही प्रयास करने के लिए हमें आमंत्रित करती नजर आती हैं। ❑

स्वनिर्माण की कठिन डगर

स्वनिर्माण या खुद को गढ़ने की प्रक्रिया विश्व का सबसे कठिन कार्य माना जाता है। आश्चर्य नहीं कि इस मार्ग पर कम ही लोग चलते हैं और उनमें से भी कुछ ही अंतिम छोर या मंजिल तक पहुँच पाते हैं। अधिकाँश तो बीच में ही जीवन के मायावी प्रवाह के बीच बहक-बिखर कर कालकल्वित हो जाते हैं। हालाँकि जीवन के अनन्त प्रवाह में नष्ट कोई भी नहीं होता, लेकिन स्वनिर्माण के प्रति बरती गई लापरवाही जीवन के आनन्द व सच्ची सार्थकता के बोध से वंचित तो कर ही देती है और व्यक्ति एक अधूरा सा जीवन जीने के लिए अभिशप्त होता है।

स्वनिर्माण की प्रक्रिया प्रकारान्तर में अनगढ़ मन को साधने एवं गढ़ने की प्रक्रिया है, जिसकी दुरूहता पर अर्जुन जैसे पराक्रमी योद्धा भी हाथ जोड़कर भगवान श्रीकृष्ण के सामने मार्गदर्शन के लिए खड़े हो जाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ढ़ांढस बँधाते हुए आश्वस्त करते हैं कि प्रक्रिया कठिन अवश्य है लेकिन असंभव नहीं व भगवद्गीता में इसका राजमार्ग सुझाते हैं। भगवान बुद्ध इसी सत्य को अलग प्रकरण में दोहराते हुए कहते हैं कि यदि एक व्यक्ति हजार योद्धाओं को हजार युद्धों में अकेले हराता है और दूसरी ओर एक योद्धा स्वयं को जीतता है, तो दूसरा योद्धा पहले से बड़ा या श्रेष्ठ माना जाएगा।

प्रकारान्तर में ये दृष्टांत स्वयं को गढ़ने एवं जीवन की उच्चतम संभावनाओं को साकार करने की दिशा में बढ़ते कदमों के लिए दिशाबोधक है। स्वनिर्माण की प्रक्रिया में इसी चंचल मन को साथ में लेकर चलना पड़ता है, जिसकी अनगढ़ता, अस्थिरता, दुर्बलता, वासना, आसक्ति, भय, भ्रम आदि से कदम-कदम पर हमें दो-चार होना पड़ता है। जन्मों से ढर्रे पर चलने का आदी मन कुछ नया नहीं करना चाहता, विषय भोगों के निनगामी प्रवाह की ओर सहज रूप में प्रवाहित होना चाहता है व अपनी पुरानी आदतों को छोड़ना नहीं चाहता।

जैसे अर्जुन कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र में दुहाई देने लगते हैं कि मैं युद्ध की बजाए भिक्षा माँगकर रहना पसंद करूँगा, कुछ ऐसे ही मन भी स्वयं का सामना करने के बजाए अपनी पलायनवादी दलीलें पेश करता है, जिनका कोई औचित्य नहीं होता।

स्वयं को गढ़ने की प्रक्रिया अनगिन अग्नि-परीक्षाओं से होकर गुजरती है। इसमें समर्थ गुरु की भूमिका साधक को स्वयं ही निबाहनी पड़ती है। उसे स्वयं ही छैनी-हथौड़ी लेकर अपनी अनगढ़ता पर प्रहार करने होते हैं एवं परिस्थितियों के माध्यम से प्रस्तुत चुनौतियों का साहसपूर्वक सामना करना होता है। व्यक्तित्व का जो हिस्सा किसी कारणवश अविकसित रह जाता है, जड़ता की अवस्था में होता है, वह इस प्रक्रिया में विद्रोह उत्पन्न करता है। उसे परिवर्तन पसन्द नहीं होता। प्रकाश की उजली किरणें पड़ते ही उसे अपना एकछत्र साम्राज्य नष्ट होता प्रतीत होता है। ऐसे में व्यक्तित्व के अँधेरे कोनों को प्रकाशित करना एक दुष्कर कार्य होता है। अंधेरे में रहने की अभ्यस्त आदतों को प्रकाश अपना दुश्मन सा प्रतीत होता है।

ऐसे में पहला कार्य तो मन को अपनी इस अवस्था के प्रति जागरूक करना होता है। अपनी इस विकट यथास्थिति का आभास आत्मनिर्माण के शुभारभ के समय होता है, जिसे एक बड़ी उपलब्धि माना जा सकता अन्यथा व्यक्ति अपनी यथास्थिति के बारे में अनभिज्ञता की अवस्था में रहता है तथा अपनी बिगड़ी स्थिति में भी स्वयं के प्रति भ्रम एवं आत्ममुग्धता की अवस्था में, अपने नवनिर्माण की संभावनाओं से कोसों दूर होता है।

अपनी यथास्थिति के बोध के बाद फिर आत्मसुधार एवं निर्माण की प्रक्रिया शुरु होती है- जो एक-एक कदम आगे बढ़ती है। यह धीरे-धीरे आगे बढ़ती है तथा समयसाध्य एवं कष्टसाध्य होती है। अपनी कष्ट-कठिनाइयों के साथ यह अपना रोमांच एवं आनन्द भी लिए हुए होती है। यह प्रसव पीड़ा जैसी स्थिति होती है, जिसमें अपनी दुर्बलताओं एवं अपंगता पर विजय के प्रत्येक क्षण व्यक्ति में नई आशा एवं उत्साह का संचार करते हैं।

समाज-संसार के मानदण्ड में हो सकता है, यह प्रगति बहुत न्यून एवं नगण्य हो तथा यह साधक को हँसी का पात्र तक बना रही हो; लेकिन स्वनिर्माण की प्रक्रिया में संलग्न व्यक्ति अपनी धुन में आगे बढ़ रहा होता है। कम्पित आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ रहे ऐसे व्यक्ति की संघर्षगाथा भुक्तभोगी ही समझ सकते हैं, जो ऐसी दर्दनाक प्रक्रिया से खुद गुजरे हों। ये पल बहुत संघर्ष भरे एवं बेहद दर्दनाक होते हैं। ये अँधेरी सुरंग में निकलने जैसे होते हैं, जहाँ प्रकाश कहीं नहीं दिखता। हार, अपमान, गलतफहमी, हताशा के कितने कड़वे घूँट पीकर संघर्ष आगे बढ़ रहा होता है, लेकिन सत्प्रयास की जीत के पुण्य पल एक दिन आते अवश्य हैं और तब इस अंतहीन यात्रा पर अँधेरी सुरंग के कोने पर दूर कहीं एक टिमटिमाती रोशनी की झलक मिलती है। ऐसे में एक नई आशा बँधती है तथा नए उत्साह का संचार होता है। अब तक के हर उतार-चढ़ाव के पीछे निहित ईश्वर की दैवीय शुभेच्छा समझ में आती है।

वस्तुतः अपनी दुर्बलताओं पर छोटी-छोटी विजय के साथ आगे बढ़ रहा, स्वयं को गढ़ रहा व्यक्ति एक अद्भुत प्रक्रिया से गुजर रहा होता है। समाज मे बहुत कम लोग उसे समझने की स्थिति में होते हैं। ऐसे मे अनावश्यक विरोध, असहयोग, प्रताड़ना, वंचना उसकी नियति का हिस्सा होते हैं; लेकिन अपनी धुन के पक्के इंसान के लिए ये सब अधिक मायने नहीं रखते।

अपनी संभावना के शिखर के सत्य की एक झलक मिलने के बाद उसका विश्वास दीपशिखा की भाँति अदम्य उत्साह लिए हुए होता है और वह अपनी नियति पर अटल आस्था के साथ स्वनिर्माण की डगर पर बढ़ चलता है और दुनिया के लिए एक मिसाल बनकर सामने आता है। यह सब किसी को दिखाने के भाव के साथ नहीं; बल्कि एक सहज स्फूर्त प्रक्रिया के अंतर्गत घटित होता है। स्वनिर्माण की यह प्रक्रिया ही गायत्री उपासना का आधार है। वर्तमान वर्ष में इस प्रयास को और गति देने की जरूरत है। ❑

महान दार्शनिक अरस्तू से उसके एक शिष्य ने जीवन में उन्नति करने का मार्ग पूछा तो उत्तर में उन्होंने उसे पाँच बातें बताईं-

1. अपना दायरा बढ़ाओ और संकीर्ण स्वार्थपरता से ऊपर उठकर सामाजिक बनो।
2. आज की उपलब्धियों पर संतोष करो और भावी प्रगति की आशा करो।
3. दूसरों के दोष ढूँढ़ने में शक्ति न खर्च करके अपने को ऊँचा उठाने के प्रयास में लगे रहो।
4. कठिनाई को देखकर न चिन्ता करो, न निराश होओ; वरन् धैर्य और साहस के साथ उसके निवारण का उपाय करने में जुट जाओ।
5. हर किसी में अच्छाई खोजो और उससे कुछ सीखकर अपना ज्ञान और अनुभव बढ़ाओ।

वस्तुतः इन पाँच आधारों को अपनाकर ही कोई व्यक्ति उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँच सकता है।

सच्चा राजा कौन?

एक बालक धरती पर लेटा विश्राम कर रहा था। वह जिस मार्ग पर लेटा था उसी मार्ग से होकर किसी राजा की सवारी आ रही थी। राजा की सवारी को आगे-पीछे से कई लोग अपने कंधों पर लिये जा रहे थे। अंततः राजा की सवारी उस स्थान तक आ पहुँची, जहाँ वह बालक अभी भी शान से लेटा हुआ था। राजा की सवारी के साथ-साथ कई सैनिक एवं मंत्री भी पैदल चल रहे थे। जब उन सबने देखा कि रास्ते में कोई बालक लेटा हुआ है तब उनमें से एक सिपाही ने कहा- बच्चे! रास्ते से हट जा और राजा की सवारी को आगे जाने दे। यह सुनकर भी वह बच्चा अपनी जगह से नहीं हटा।

उस बच्चे ने कहा- कौन राजा? कैसा राजा? और फिर बोला कि असली राजा तो मैं हूँ। तुम सब जिस राजा को ढोये फिर रहे हो वह तो नकली राजा है। तुम्हारा राजा तो जन्मने और मरने वाला है। तुहारा राजा तो भय और आशंका में जीता है। इसके पास आज बादशाही है और कल नहीं रहेगी पर मेरी बादशाही तो सदा मेरे पास रहेगी। मेरी बादशाही अजर, अमर, अविनाशी है; पर तेरे राजा की बादशाही विनाशी है। मैं तो अजन्मा और अविनाशी सदा मुक्त आत्मा हूँ, इसलिए असली राजा तो मैं हूँ।

राजा की सवारी के साथ चल रहे वजीर, मंत्री, सैनिक सब उस बालक की बातें सुनकर हैरान और अचंभित थे। वजीर ने सोचा यह लड़का कोई साधारण बालक नहीं हो सकता। निश्चित ही यह कोई सिद्ध, ब्रह्मज्ञानी साधु है; क्योंकि ऐसी बातें कोई साधारण बालक बोल ही नहीं सकता। यह निश्चित ही कोई असाधारण व अद्‌भुत बालक है। उस वजीर ने सारी बातें राजा को बतायीं। वजीर की बातें सुनकर राजा स्वयं पालकी से उतरकर उस बालक के पास आया। उसने उस बच्चे से कहा- बेटा! तुम स्वयं को राजा क्यों और कैसे समझते हो? तुहारे पास न धन-दौलत है, न कोई साम्राज्य है, न नौकर-चाकर हैं और न ही कोई महल है फिर तुम राजा कैसे हुये?

राजा की बातें सुनकर उस बालक ने कहा- राजन्! जो कुछ तुहारे पास है वह तुहारा नहीं है। वह कल किसी और का होगा और जो मेरे पास है वह सदा मेरा ही रहेगा। जो मेरे पास है उसे तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी मुझसे नहीं छीन सकते। राजा ने सोचा कि यह लड़का तो बहुत ही ज्ञानवान है। इसे अपना पुत्र बना लेना चाहिए।

यह सोचकर राजा ने कहा- क्या तुम मेरे पुत्र बनना चाहोगे। तब लड़के ने कहा- राजन्! तुम मुझे कौन सा सुख दे सकोगे? तब राजा ने कहा-बेटा! मैं जो खाऊँगा वही तुम्हें खिलाऊँगा, मैं जो पहनूँगा वही तुम्हें पहनाऊँगा। मैं सुन्दर सेजों पर सोता हूँ। तुम्हें भी मैं सुन्दर सेजों पर सुलाऊँगा और जो भी सुख मुझे प्राप्त है वह सब तुम्हें दूँगा। तुम्हें अपना उत्तराधिकारी भी बनाऊँगा और फिर तुम मेरे पूरे राज्य के, साम्राज्य का मालिक कहलाओगे।

उस बालक ने कहा-राजन्! तुमने जितने भी प्रकार के सुख देने की बातें कहीं हैं उनमें कोई भी मुझे शाश्वतसुख देने में समर्थ नहीं है, मुझे आत्मिक आनंद, परम आनंद देने में समर्थ नहीं है। शाश्वतसुख, परमसुख, परम आनंद, आत्मिक आनंद तो सिर्फ परमात्मा ही दे सकते हैं, जिन्हें मैंने पहले ही अपना पिता, अपना परमपिता मान रखा है, बना रखा है फिर मैं तुम्हारा पुत्र बनकर क्या करूँगा? मेरे परमपिता ने मुझ पर इतनी कृपादृष्टि कर रखी है जिसका कोई अंत ही नहीं है; फिर मैं ऐसे परमपिता को छोड़कर किसी और को पिता क्यों बनाऊँ?

यह सुन कर उस राजा ने कहा-बेटा! क्या तुम मुझे उस परमपिता का दर्शन करा सकते हो? तब उस बालक ने कहा- मेरा मालिक, मेरा परमपिता हर पल मेरे साथ रहता है। वह मेरी हर साँस में समाया हुआ है। मेरे कानों से वही सुन रहा

है, मेरी नाक से वही सूँघ रहा है, मेरी वाणी से वही बोल रहा है, मेरे नेत्रों से वही देख रहा है, मेरे प्राणों का आधार भी वही है। वही आत्मज्योति बनकर स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के वस्त्र पहन रहा है।

वह बालक बोला- मैं स्वयं को आत्मा मानता हुआ हर पल, अजर, अमर, अविनाशी रूप में निवास करता हूँ। तुम मुझे पंचभौतिक शरीर समझ रहे हो? यह तो मेरा आवरण मात्र है, वस्त्र मात्र है। मैं तो पंचभूतों से परे हूँ। मैं भूतनाथ हूँ। जब तक तुम स्वयं को 'मैं' मानते रहोगे, देह मानते रहोगे, जब तक तुम उसे नहीं पा सकते। उसे नहीं महसूस कर सकते। जिस पर परमपिता परमेश्वर की कृपादृष्टि हो जाती है वह अमंगल से मंगलरूप हो जाता है। जैसे सागर से मिलकर नदियाँ अपना नाम-रूप खो देती हैं वैसे ही परमात्मा को पाकर जीव भी अपने नाम-रूप को खोकर उसी के सदृश हो जाता है। परमात्मा को पाने की यदि सच्ची लगन हो, तो उसकी कृपा मिलकर रहती है।

उस दिन सचमुच राजा को राजा होने का असली मर्म समझ में आ गया था। राजा उस बालक की असली बादशाहत के समक्ष नतमस्तक हो गये।

❑

पुराणों में गोवर्धन पर्वत के संबंध में कथा आती है कि वह कभी सुमेरु पर्वत का शिखर हुआ करता था। जब हनुमान जी सेतुबन्धन के समय उसे ला रहे थे तो उनके ब्रजभूमि तक पहुँचते-पहुँचते घोषणा हो गयी कि सेतुबन्धन का कार्य पूरा हो गया है। अब पर्वत लाने की आवश्यकता नहीं है। यह घोषणा सुन कर हनुमान जी ने गोवर्धन को वहीं रख देना चाहा, जहाँ से वे उसे उठा कर ला रहे थे। ऐसे में गोवर्धन पर्वत ने हनुमान जी से कहा- तुम मुझे घर से, परिवार से, कुटुंब से अलग करके भगवान की सेवा के लिए ले जा रहे थे, सो तो ठीक था लेकिन अब मुझे भगवान की सेवा में लगाए बिना मार्ग में यूँ ही छोड़ देना, यह किसी दृष्टि से उचित नहीं है। हमारे लिए उचित व्यवस्था बनाए बिना छोड़कर मत जाओ।

हनुमान जी असमंजस में पड़े तो उन्होंने भगवान राम से पूछा कि क्या किया जाए? भगवान ने उत्तर में कहा कि गोवर्धन को ब्रज में स्थापित कर दो। अभी तो मेरा राम अवतार है, जब मैं कृष्ण अवतार में आऊँगा, तब गोवर्धन को अपना लीलाकेन्द्र बनाऊँगा। अभी तो उसे यहाँ सेतु पर रख दिया जाए तो मैं सेतु पार करते समय उसके ऊपर पाँव रखकर निकल जाऊँगा। लौटते समय संभव है कि सेतु का प्रयोग न करना पड़े। इसलिए ब्रज में गोवर्धन के स्थापित हो जाने पर मैं उस पर गाय चराने के लिए नंगे पाँव विचरण करूँगा, उसके झरनों के जल में स्नान करूँगा, उसकी मिट्टी को अपने शरीर पर लगाऊँगा, उसके फूलों से अपना शृंगार करूँगा और अपना संपूर्ण किशोरकाल वहीं गुजारूँगा। भगवान की इस घोषणा से गोवर्धन संतुष्ट होकर ब्रजभूमि में स्थापित हो गए।

जिनके शब्द ब्रह्मवाक्य बन जाते थे

चमत्कारों को करना या दिखाना महापुरुषों के जीवन प्रसंग का मूल उद्देश्य नहीं होता; तथापि उनके तप की प्रखरता, उनके अंदर उपस्थित दैवीय चेतना का प्रभाव ही कुछ ऐसा होता है कि उनके मुख से निकले शब्द स्वतः ही ब्रह्मवाक्य बन जाते हैं। वे जो कह देते हैं-उसका घटना सुनिश्चित सा हो जाता है। ऐसा वो करना चाहें अथवा न चाहें पर प्रसंग कुछ इसी प्रकार घटित होते हैं कि व्यक्ति को उनके अवतारी होने की पुष्टि हो ही जाती है। यह लिखने का अभिप्राय मात्र इतना है कि परमपूज्य गुरुदेव के समान अवतारी शक्ति को लेकर जो आत्माएँ इस धरती पर आती हैं, उनके जीवन का मूल उद्देश्य तो उस योजना का क्रियान्वयन करना होता है, जिसके निमित्त वे आए हैं, परंतु तब भी उनका करुणासिक्त हृदय दूसरों के दुखों-कष्टों को दूर करने के लिए कुछ ऐसे घटनाक्रमों को जन्म दे देता है, जिन्हें देख-सुन कर अद्भुत, अलौकिक, अविस्मरणीय कहने के लिए विवश होना पड़ता है। परमपूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माताजी की जीवन लीला में ऐसे एक नहीं सहस्रों संस्मरण देखने व सुनने को मिल जाते हैं।

सन् 1982 में एक महिला के साथ घटी हुई घटना का संस्मरण कुछ इसी प्रकार का कहा जा सकता है। गुजरात के पंचमहल जिले की वह महिला बहुत परेशान थी और उसकी परेशानी का कारण भी उचित था। उनकी युवा बेटी बिना किसी सूचना को दिए, बिना किसी को कुछ बताए एकाएक लापता हो गई थी। पुलिस से लेकर गुप्तचरों की सहायता ली गई पर परिणाम शून्य ही रहा।

बहुत प्रयासों के बाद भी कहीं से, कोई भी आशाजनक समाचार न मिल सका। वे स्वयं अपने परिवार के साथ पुत्री को ढूँढ़ने के लिए न जाने कहाँ-कहाँ भटकती रहीं। आखिरकार उनकी यही दौड़ उनको हरिद्वार तक लिवा लाई। वे हरिद्वार आकर ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान से लगे हुए कच्छी आश्रम में ठहरीं।

दुःख-कष्ट में व्यक्ति होता है तो कोई भी उपाय करने से चूकता नहीं है। उन्होंने हरिद्वार के सारे आश्रमों में पुत्री का फोटो चिपकवाया, उस पर गुमशुदा की तलाश भी लिखवाया; ताकि लोग उनसे संपर्क कर सकें। ये सब करने के बाद वे कुछ पंडितों-पुजारियों से तप-अनुष्ठान के लिए प्रार्थना भी करने लगीं। उनकी ये भागदौड़ देखकर कच्छी आश्रम के स्वामी जी ने उन्हें मिलने बुलवाया और बोले-बहन! आप कष्ट में हैं, हम जानते हैं, पर इधर-उधर भटकने से बहुत लाभ नहीं होगा। पूजा-उपासना का निश्चित लाभ होता है; पर आप उसमें लाखों रुपये मत फूँकिए।

उनका कहा सुनकर वह महिला फफक कर रो पड़ीं और बोलीं- तो स्वामी जी! आप ही बताइए कि क्या करूँ? कहाँ जाऊँ और किससे मदद माँगूं? पुलिस से लेकर पंडित सभी के तो हाथ जोड़ लिए हैं। कच्छी आश्रम के स्वामी जी बोले- यदि आप इतनी जगह हो आई हैं तो एक जगह और शेष है। मेरे कहने से वहाँ भी हो आईए।

आशा भरी दृष्टि से उस महिला ने स्वामीजी को देखा तो वे बोले-आपको भगवान हरिद्वार तक ले आया है तो इसके पीछे भगवान की इच्छा ही रही होगी। आप यहाँ आई हैं तो शांतिकुञ्ज आश्रम के संस्थापक पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी से मिल आईए। उनकी बाहरी वेशभूषा से धोखा मत खा जाइयेगा। बाहर से दिखने में तो आपको ऐसा ही लगेगा कि कोई घर के सज्जन हैं, सौम्य बुजुर्ग लगते हुए भी उनके बाह्य स्वरूप के पीछे जो व्यक्तित्व है वह अवतार का है। उनसे यदि आप अपनी मन की इच्छा जाहिर करें, तो शायद वे आपकी मदद कर दें। प्रार्थना करने में कोई हर्ज नहीं। डूबते को तिनके का सहारा पर्याप्त होता है। उन महिला की आँखों में भी आशा की किरण जागी और अगली सुबह वे मिलने की लाइन में लग कर परमपूज्य गुरुदेव से मिलने पहुँचीं।

संयोग ऐसा था कि उस दिन गुरुदेव कहीं कार्यक्रम में बाहर होने के कारण मिलने नहीं बैठे थे। वह महिला तब तक रोज आती रही, जब तक परमपूज्य गुरुदेव शांतिकुञ्ज लौट नहीं

आए। उनके लौटने पर वह महिला पुनः मिलने आईं और गुरुदेव के सम्मुख उन्होंने अपनी व्यथा रखी।

पूज्यवर ने उनको सांत्वना देते हुए कहा कि-हम माँ गायत्री से प्रार्थना करेंगे, चिंता न करें। उन महिला को लगा कि गुरुदेव कुछ और भी कह देते तो अच्छा होता। वह नीचे उतर जाने के बाद दुबारा लाइन में लगकर आ गयीं। जो संपूर्ण मानवता के हजार वर्षों के भविष्य की पटकथा लिख रहे थे, उनके लिए किसी के मनोभावों को जानना कौन-सा कठिन कार्य था। इस बार वे उस महिला से बोले-बेटी! चिंता न करो। आपकी बेटी घर आ जाएगी। कुछ समय जरूर लगेगा। उसका फोटो भिजवा देना।

अगले ही दिन ब्रह्मवर्चस के एक कार्यकर्ता के माध्यम से उन्होंने अपनी पुत्री का एक फोटो भिजवा दिया। फिर वे वापस पंचमहल को लौट गयीं। कुछ माह निकल गए पर पुत्री तब भी न लौटी तो उनको चिंता होने लगी। उन्होंने घबराहट में दो-तीन पत्र ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के कार्यकर्त्ता को लिख दिए। वे कार्यकर्त्ता उन पत्रों को लेकर पूज्यवर के पास पहुँचे और समाधान का निवेदन करने लगे।

गुरुदेव बोले- चल बेटा! उसको पत्र लिख कि आपकी बेटी शारदा सुरक्षित है पर अभी गर्भवती है। इसलिए यात्रा नहीं कर पा रही है। माँ बनते ही वो अपने शिशु के साथ घर पहुँच जाएगी। युगऋषि के मुख से निकले शब्दों को सत्य तो होना ही था। ऐसा ही घटा। प्रसव के कुछ दिनों बाद बेटी अपनी माँ के घर पंचमहल पहुँची और फिर तीनों पीढ़ियाँ साथ चलकर परमपूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माताजी के दर्शन को पहुँचे।

ये घटना चमत्कार की दृष्टि से नहीं; वरन् इस दृष्टि से साझा की जा रही है कि अवतारी चेतनाएँ अपने बाह्य स्वरूप पर कितना बड़ा पर्दा डालकर के रखती हैं। त्रिकालज्ञ होने के बाद भी एक साधारण व्यक्तित्व को धारण किए रखना ही उनके व्यक्तित्व की असाधारणता को दर्शाता है। यही तो उनकी महानता को और बढ़ाता है। क्या ये कम सौभाग्य की बात नहीं कि हम सब गायत्री परिजन उन्हीं सद्गुरु के शिष्य हैं? ❑

एक बार देवर्षि नारद ने अपने पिता ब्रह्मा से कहा, 'पूज्यवर आप परमपिता हैं। देवता और दानव दोनों आपकी ही संतान हैं। भक्ति और ज्ञान में देवता श्रेष्ठ हैं, तो शक्ति और तप में दानव श्रेष्ठ हैं। आपने दानवों को पाताल में और देवों को स्वर्ग में स्थान दिया, ऐसा क्यों? क्या देवता दानवों से श्रेष्ठ हैं? ब्रह्माजी ने कहा- इस प्रश्न का उत्तर देना सरल है। तुम देव और दानव, दोनों को भोजन पर आमंत्रित करो, तुम्हें तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा। निमंत्रण पाकर दोनों ब्रह्मलोक पहुँचे। दानव पहले पहुँचे। भोजन परोसा गया।

दानव भोजन आरंभ करने ही वाले थे कि ब्रह्मा जी बोले- भोजन सबको मिलेगा; लेकिन कोहनी को मोड़े बगैर भोजन ग्रहण करना है। दानव असमंजस में पड़े, उन्होंने कई तरीकों से भोजन करने की कोशिश की, लेकिन कोई बात नहीं बन पायी, तो वे बिना खाये ही चले गये। देवता पहुँचे तो उन्हें भी ब्रह्माजी ने वही बात कही। देवताओं ने यह सुनकर एक-दूसरे को भोजन खिलाना आरंभ कर दिया। वे सब संतुष्ट होकर गये। नारद जी को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया था। एक-दूसरे का ध्यान रखने के कारण ही देवता, दानवों से श्रेष्ठ सिद्ध हुए और नारद जी को यह पता चल गया कि मिल-बाँटकर खाने वाला ही देवत्व का अधिकारी होता है।

प्रज्ञावान होने का अमर संदेश

श्रीभगवद्गीता के दूसरे अध्याय का ग्यारहवाँ श्लोक बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, जिसमें श्रीभगवान् कहते हैं-

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥ (गीता 2/11)

यह श्लोक इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि भगवद्गीता का यथार्थ आरंभ, भगवद्गीता की शुरुआत इसी श्लोक से होती है। इस श्लोक द्वारा ही भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता का उपदेश देना आरंभ करते हैं।

भगवान कृष्ण के कई रूप हैं, भगवान कृष्ण के व्यक्तित्व के अनेकों आयाम हैं। भगवान कृष्ण देवकी और वसुदेव के आठवें पुत्र हैं, कंस के भाँजे हैं। भगवान कृष्ण वे हैं, जिन्हें यशोदा मैया और नंद बाबा ने पाला। भगवान कृष्ण वे हैं, जिन्होंने वृन्दावन में रास रचाया। भगवान कृष्ण वे हैं, जो यदुकुलशिरोमणि वृष्णिवंशी हैं। भगवान कृष्ण वो हैं, जो इन सबसे अलग योगेश्वर कृष्ण हैं। भगवान श्रीकृष्ण जब गीता कहते हैं तो महर्षि व्यास उनके बारे में कहते हैं-

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ (गीता 18/78)

अर्थात् जहाँ योगेश्वर कृष्ण हैं, जहाँ धनुर्धर पार्थ हैं, वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है-ऐसा मेरा मत है। भगवान श्रीकृष्ण जब भगवद्गीता कहते हैं तो वहाँ पर कृष्ण व्यक्ति के रूप में ही नहीं, बल्कि व्यक्तित्व के रूप में भी अनुपस्थित होते हैं। वहाँ कृष्ण जिस रूप में हैं, उस रूप में वे एक माध्यम हैं। वहाँ पर कृष्ण की देह, कृष्ण का व्यक्तित्व एक माध्यम है। वहाँ वे स्वयं भगवान के रूप में प्रकट होते हैं। वहाँ स्वयं परमेश्वर प्रकट होते हैं। यहाँ परमेश्वर से एकाकार हो करके ब्राह्मीचेतना से एक हो करके भगवान श्रीकृष्ण, परमेश्वर की बात करते हैं।

जब दोनों सेनाओं के मध्य में रथ को स्थित करके भगवद्गीता कही जा रही थी तो इसके पहले अर्जुन ने अपने सारथी श्रीकृष्ण से निवेदन किया कि- हे वासुदेव मेरे रथ को दोनों सेनाओं के मध्य स्थित कर दीजिए। मैं देखूँ तो सही कि मनुष्य, मनुष्यता और उसका जीवन कितना निम्न कोटि का हो गया है। कौन आया है उस पक्ष में और कौन आया है इस पक्ष में। जीवन के दो अलग-अलग तल कहाँ-कहाँ पर स्थित हैं। ऐसी निकृष्टता किसमें आ गयी है जिसके कारण वो द्रौपदी के चीरहरण का पक्ष लेने आये हैं। जो महाभारत में खड़े हैं, जो दुर्योधन के पक्ष में खड़े हैं, ये वही लोग हो सकते हैं जिनके मन में नैतिकता, जिनके मन में आध्यात्मिकता, जिनके मन में विचारशीलता शून्य हो गयी हो। क्यों?

द्रौपदी का चीरहरण, एक माननीय स्त्री का, एक सम्राट की पत्नी का, एक विशाल साम्राज्य की साम्राज्ञी का चीरहरण है। इसमें एक देश के प्रतीक का, एक राष्ट्र के प्रतीक का, एक संभ्रान्त नारी का वस्त्रहरण हो रहा है। दुर्योधन के कुकर्मों को जानते हुए, लाक्षागृह के कुकर्मों को जानते हुए, द्यूतक्रीड़ा के कुकर्म को जानते हुए- इन सारे कुकर्मों को जानते हुए ऐसे कौन लोग हैं, जो दुर्योधन के पक्ष में खड़े हैं?

वास्तव में तो दुर्योधन के पक्ष का स्वाभाविक रूप से त्याग कर देना चाहिए। जो व्यक्ति ऐसे कर्म करता है, उसके प्रति हमारे समाज का दायित्व बनता है, विचारशील व्यक्तियों का दायित्व बनता है कि उसका त्याग कर दें। अब प्रश्न ये है कि वे व्यक्ति विचारशील हैं या विचारहीन हैं?

अर्जुन के मन में ये प्रश्न है कि पीड़ित के पक्ष में कौन और उत्पीड़क के पक्ष में कौन? प्रश्न महाभारत का नहीं है, प्रश्न न्याय व्यवस्था का है, न्यायशून्यता का है। प्रश्न इस बात का है कि इस संसार में न्याय है अथवा न्याय नहीं है?

महाभारत का यह युद्ध जब शुरु हुआ तो महर्षि व्यास कहते हैं कि एक बड़ा विचित्र सा ग्रहयोग आया। महर्षि व्यास गिनाते हैं कि धृतराष्ट्र! ऐसी ग्रह दशाएँ लगी हैं जिनमें कि मंगल, राहु, शनि की युतियाँ ऐसी बन रही हैं कि उनके कारण महाविनाश आएगा।

उस महाविनाश को आमंत्रण देने वाले कौन हैं? फिर भी अर्जुन को अपने संबंधों को ले करके शोक होता है कि क्या ये वही संबंधी हैं, क्या ये वही लोग हैं, जिनके सामने द्रौपदी के चीरहरण का प्रयास हुआ। चलो, वो लोग तो अपने धर्म से पतित हुए। हम कैसे पतित हो जाएँ, हम क्या सोचें, क्या करें। उन्होंने कहा कि- हे केशव! मैं युद्ध नहीं करना चाहता। इस महाविनाश का निमित्त कारण मैं नहीं होना चाहता। इस महाविनाश का एक यंत्र मैं नहीं बनना चाहता। ऐसा अर्जुन कहते हैं क्योंकि; अर्जुन विषाद में है, गहरे विषाद में है।

विषाद के कई रूप हैं। श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा महान काव्य है, एक ऐसा महान ग्रंथ है, एक ऐसा महान उपदेश है जो मनुष्य को विषाद से प्रसाद की ओर ले जाता है। जो मनुष्य के दुःख को प्रसन्नता में बदलता है। श्रीअरविन्द एक शब्द कहते हैं- ट्रांसफॉर्मेशन। ट्रांसफॉर्मेशन का मतलब होता है- कायांतरण, परिवर्तन, बदलाव, पूरा का पूरा बदल जाना। इसमें मनुष्य आकृति से नहीं, प्रकृति से बदलता है। आकार तो वही रहता है; लेकिन जो उसकी प्रकृति होती है, वह बदल जाती है। ट्रांसफॉर्मेशन का मतलब परिवर्तन नहीं होता है, रूपांतरण होता है। इसमें जीवन का स्वरूप ही बदल जाता है।

गीता के दूसरे अध्याय के इस ग्यारहवें श्लोक के माध्यम से भगवान श्रीकृष्ण एक अद्भुत वाणी कहते हुए एक अद्भुत विचारशीलता देते हैं, सोचने-समझने की शक्ति देते हैं। ये श्लोक मनुष्य के जीवन में विवेक के अंकुरण का श्लोक है। विवेक अंकुरित करो। क्या सोचना चाहिए, किस पर शोक करना चाहिए और किस पर नहीं। कहाँ क्या करना चाहिए, ये सोचो। भगवान कहते हैं- अर्जुन! ध्यान से सुनो मेरी बात।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

वे कहते हैं कि हे अर्जुन! अशोच्यानन्वशोचस्त्वं, जिनके लिए शोक नहीं करना चाहिए, उनके लिए तुम शोक कर रहे हो और तुम बातें ऐसी कर रहे हो, जैसे प्रज्ञावादांश्च भाषसे। ऐसी बातें केवल प्रकाशित बुद्धि वाले करते हैं। तुम पण्डितों की तरह बातें कर रहे हो, ज्ञानीजनों की तरह बातें कर रहे हो परंतु अगतासून्- जो जीवित हैं, जिनके प्राण देह में स्थिर हैं, गतासून- जिनके प्राण चले गए हैं, नानुशोचन्ति पण्डिताः- पण्डितजन उनके लिए शोक नहीं करते।

भगवान कहते हैं- वाणी से, विचार से, शब्द से कोई प्रज्ञावान नहीं होता अर्जुन! तुम जो कहते हो और जो कर रहे हो- उसमें बड़ा भेद है। तुम्हारे शब्द, तुम्हारे आचरण से मेल नहीं खाते। तुम ज्ञानियों की तरह बातें तो कर रहे हो; लेकिन ज्ञानियों की तरह तुम्हारा आचरण नहीं है। ज्ञान को तुमने जाना नहीं, समझा नहीं, आत्मसात नहीं किया। ज्ञान को आत्मसात करने वाला ज्ञानी क्यों शोक करेगा? जीवन के सत्य को, तत्त्व को जानने वाला क्यों शोक करेगा? उसको मनुष्य जीवन की घटनाओं का सार मालूम है। अस्थिरता में स्थिरता, चिंताजनक क्षणों में निश्चिंतता, अशांति में शांति, झंझावातों में एकाग्रता जो इन्हें पा पा लेता है- वही ज्ञानी होता है।

यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते, ऐसी अवस्था है प्रज्ञावान होना, जिसमें बड़े से बड़े दुःख में मनुष्य विचलित नहीं होता। झंझावातों में अडिग रहता है। भगवान कहते हैं- अर्जुन, सोचो तो कि तुम क्या बोल रहे हो। तुम धर्म की बातें कर रहे हो, कुलधर्म की बातें कर रहे हो, तुम मनुष्यता को बचाने की बातें कर रहे हो। कैसे? तैरने की बातें करने वाला, तैराकी की पुस्तक पढ़ने वाला-पढ़ाने वाला तैराक नहीं होता। तैराक वह होता है जो भरी नदी में कूद करके, उफनती-उमड़ती वर्षा की जलराशि में कूद करके उसे पार कर जाने की क्षमता रखता है, वह होता है तैराक।

जब भगवान कहते हैं-अशोच्यानन्वशोचस्त्वं, बात जीवन की हो रही है, जीवन के अर्थ पर मनन की हो रही है तो शोक और अशोक की बात भी करनी चाहिए। किसका शोक और किसका अशोक? किस पर शोक किया जाए और किस पर शोक न किया जाए? अगर तुम जीवन को जानते हो, तो ये भी जानते होगे कि मृत्यु एक अनिवार्य सत्य है। मृत्यु और जन्म एक घटना है प्रकृति में जो घटित होनी ही है। जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च, जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु सुनिश्चित है। इस तरह जो जीवन और मरण को समझ लेता है, वही जीवन के तत्त्व को भी समझ लेता है। जो जीवन के रहते आत्मतत्त्व का बोध कर लेता है, आत्मतत्त्व की अमरता का बोध कर लेता है, वही जीवन को समझ लेता है।

शोक क्यों और किसका? और अशोक क्यों और किसका? शोक और अशोक को समझो। जीवन के प्रवाह को समझो। जीवन के सत्य को समझो। अर्जुन! तुम शोक कर रहे हो, विषाद में हो लेकिन विषाद क्यों? किसलिए

विषाद। तुम शास्त्र वचन सुना रहे हो; धर्म की बात सुना रहे हो हमको, लेकिन शोकयुक्त हो करके, बिलख-बिलख कर रो करके। तुम बातें तो ऐसी कर रहे हो, जैसे कोई सम्यक् संबुद्ध बोल रहा है। बातें तो ऐसी कर रहे हो जैसे कोई ऋषि बोल रहे हैं, लेकिन ऋषित्व तो तुहारे अंदर है ही नहीं।

जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण बात है-निर्मलता, पवित्रता, सहृदयता। इसलिए श्रीरामचरितमानस में भगवान श्रीराम कहते हैं- निर्मल मन जन सो मोहि पावा, मोहि कपट छल छिद्र न भावा। जब हम संतों का जीवन देखते हैं, यानि जब हम शबरी को, कबीर को, रैदास को, सखूबाई और जनाबाई को, तुकाराम को, गोरा कुम्हार को देखते हैं-तो इनमें से कोई भी शास्त्रज्ञ नहीं था। इनमें से कोई भी किसी गुरुकुल का विद्यार्थी नहीं था। इनमें से किसी ने भी शिक्षण की बड़ी उपाधि प्राप्त नहीं की थी। फिर भी ये ज्ञानी थे, अनुभव इनके जीवन में था, प्रकाश इनके जीवन में था।

भगवान गीता में यही कहते हैं-प्रज्ञावादांश्च भाषसे, अशोच्यानन्वशोचस्त्वं। अभी तुमने विचारशीलता नहीं सीखी है। अभी तुमने प्रज्ञा का प्रकाश नहीं पाया है। प्रज्ञा का प्रकाश प्राप्त करने वाला विषाद में नहीं जाता है। अभी तुमने परमेश्वर का संस्पर्श नहीं पाया है। अभी तुमने कृष्ण का परिचय वसुदेवपुत्र के रूप में पाया है। अभी तुमने कृष्ण का परिचय वृष्णिवंशी, यदुवंशी के रूप में पाया है। देखो तो मैं कौन बोल रहा हूँ। हे मनुष्य! हे नर! समझो इस बात को, कि नारायण तुमसे संबोधित हो रहे हैं।

श्रीभगवद्गीता में एक बार भी नहीं कहा गया है- श्रीकृष्णोवाच यानि कृष्ण बोले। भगवद्गीता का आरंभ, भगवद्गीता का प्रत्येक उवाच कहता है- श्रीभगवानुवाच, भगवान बोले। यहाँ कुंती का भतीजा और देवकी का बेटा नहीं बोल रहा है, बल्कि परमेश्वर बोल रहे हैं। यहाँ भगवान जीवन के सत्य और मर्म की पहली कक्षा अर्जुन को सिखा रहे हैं कि निष्कपट बनो अर्जुन, विचारशील बनो। सोचो कि शोकयोग्य क्या है? क्योंकि जीवन थोड़ा है।

भगवान जब कहते हैं -अशोच्यानन्वशोचस्त्वं, बात यह है कि समझो सत्य को। रटने से कुछ नहीं होगा। समझ से बहुत कुछ होगा। सोचो, समझो। कहाँ उचित है, कहाँ अनुचित है। क्या ठीक है, क्या ठीक नहीं है। विवेक को अंग्रेजी में कहते हैं- डिस्क्रीमिनेशन। वेदांत में कहते हैं- नित्यानित्यविवेक, क्या नित्य है, क्या अनित्य है। क्या नहीं रहेगा, क्या रहेगा- यह विवेक है। शब्द तो बहुत हैं, शब्द सबके पास हैं, लेकिन अर्थ एवं अनुभव किसी के पास नहीं है। अहंकार में अर्थ खो गया है।

अंधा होना कोई दुर्भाग्य नहीं है, कर्म का फल है। धृतराष्ट्र अंधे थे। अंधे कई तरह से होते हैं, जैसे- जन्मांध- आँखें नहीं हैं जन्म से। ये अंधे होने का एक प्रकार ह; लेकिन मोहांध, कामांध, मदांध- इस तरह से भी वे अंधे हैं । क्योंकि उनकी आँखों पर ही पर्दा नहीं पड़ा है बल्कि उनके मन पर भी पर्दा पड़ा है। उनका कालापन मस्तिष्क में है। अंधे तो सूरदास भी थे लेकिन धृतराष्ट्र का अंधापन आसक्ति का अंधापन था। धृतराष्ट्र का अंधापन असुरक्षा का अंधापन था, अनिश्चितता का अंधापन था।

व्यास जैसे महान ऋषि का संपर्क, भीष्म जैसे महात्मा का संपर्क, द्रोण जैसे आचार्य का संपर्क, कृपाचार्य जैसे आचार्य का संपर्क, ज्ञानीजनों-गुणीजनों का संपर्क, भगवान श्रीकृष्ण जैसी विभूति और अवतार का संपर्क- उनके अंदर का अंधापन दूर नहीं कर पाया। वह ऑपरेशन नहीं हो पाया, वह शल्यक्रिया नहीं हो पायी जिससे उनका अंधापन दूर होता। जन्मांध होना कोई बुरी बात नहीं; लेकिन यह जो अंधापन है- आसक्ति का अंधापन, मोह का अंधापन- यह अंधापन ठीक नहीं है। ये अंधापन उचित नहीं है।

वाणी सबके पास है। कौन नहीं बोलता मीठी वाणी। शकुनि बोलता है। रावण को भी दंभ है कि- मैं चारों वेदों का भाष्यकार पंडित। किस काम आया ये भाष्य? वह सीता चुरा कर ले आया, इस काम आया और अपने आराध्य भगवान शिव से सोने की लंका दक्षिणा में माँग करके ले आया, इस काम आया।

भगवान गीता के इस श्लोक में जो प्रज्ञावान होने का संदेश दे रहे हैं कि शोक मत करो, अशोक हो जाओ, प्रज्ञावान हो जाओ, भ्रांतियों को दूर करो, प्राणों का धर्म समझो। प्राण गए या प्राण हैं- ये विचारणीय विषय नहीं है; बल्कि प्राणों के रहते हुए प्रज्ञावान बनना है, ये विचारणीय विषय है और यही इस श्लोक का मुख्य संदेश है।

❑

रचनात्मकता की प्रक्रिया

जीवन में श्रम का बहुत महत्व है, लेकिन खाली श्रम, वह भी कोल्हू के बैल की तरह किसी भी रूप में उचित नहीं, जिसका उत्कृष्ट जीवन के साथ कोई विशेष सबन्ध नहीं रहता। ढर्रे पर चल रहे ऐसे जीवन की अपेक्षा उचित श्रम, धैर्य, चिंतन एवं अध्यवसाय के आधार पर हम रचनात्मक कार्य करते हुए जीवन को सहज रूप में उत्कृष्ट एवं सफल बना सकते हैं। बस आवश्यकता है रचनात्मकता की प्रक्रिया को समझने की एवं इसे जीवन में अपनाने की।

रचनात्मकता पर शोध कर रहे विशेषज्ञों ने इसकी प्रक्रिया को मोटे तौर पर चार भागों में बाँटा है, जो हैं - प्रिपरेशन, इन्क्यूबेशन, इल्यूमिनेशन एवं वेरीफिकेशन। इनका सार तत्व कुछ इस तरह से है।

1- प्रिपरेशन - यह तैयारी का चरण है। हमें जिस भी समस्या को हल करना है या नये विचार को असली जामा पहनाना है या कोई नया सृजन करना है, उसके बारे में अधिक से अधिक जानकारी हम बटोरते हैं। इस पर चर्चा करते हैं, चिंतन-मनन, ब्रेन स्टोर्मिंग अर्थात विचार मंथन करते हैं। इस तरह विषय या समस्या से सबन्धित हर संभावित पहलू पर विचार करते हैं तथा अपने सर्वश्रेष्ठ प्रयास के बाद फिर इसे दूसरे चरण, इन्क्यूबेशन के लिए छोड़ देते हैं।

2- इन्क्यूबेशन - अर्थात् परिपाक काल। ये इंतजार के पल होते हैं और मानसिक विश्राम के पल होते हैं। समस्या को एक तरह से अब हम भूल जाते हैं या तकिये के नीचे रखकर सो जाते हैं तथा दूसरे कार्यों में लग जाते हैं। यहाँ नए सृजन या समाधान के निमित्त अचेतन मन की विचार प्रक्रिया का प्रयोग हम कर रहे होते हैं। अचेतन या मन का सूक्ष्म हिस्सा अपना काम या प्रोसेसिंग कर रहा होता है, जिसके परिणाम अगले चरण इल्यूमिनेशन में प्रकट होते हैं।

3- इल्यूमिनेशन - जब भी हम अपनी टेबल पर समाधान के लिए बैठते हैं तो विषय से सबन्धित नये-नये विचार हमें आते हैं, समस्या से सबन्धित नूतन समाधान हमें सूझते हैं। यहाँ तक कि चलते-फिरते या स्वप्न तक में ये समाधान हमारे सामने कौंधते हैं। ये बुद्धि के प्रकाशित होने के पल होते हैं, जब समस्या के समाधान बिजली की तरह से चिदाकाश पर कौंधते है। इनको नोट किया जाता है, तथा इनको असली जामा पहनाने के लिए अब हम अगले चरण की ओर बढ़ते हैं।

4- वेरीफिकेशन या क्रियान्वयन एवं सत्यापन - इसमें प्राप्त समाधान का हम क्रियान्वयन करते हैं एवं इसकी वैधता का मूल्यांकन भी इसमें होता है। इस चरण में नए विचार को लागू किया जाता है या पुरानी कड़ी में जोड़ा जाता है और यदि अभी भी कुछ कसर रह गई हो तो सारी प्रक्रिया पुनः पहले चरण से दुहराई जाती है अर्थात् पुनः ब्रेन स्टोर्मिंग, इन्क्यूबेशन एवं इल्यूमिनेशन के चरणों से विषय के नए विचार, समाधान एवं गहराइयों तक पहुँचते हैं और अपने कार्य को पूर्णता या सिद्धि तक ले जाते हैं।

इस तरह रचनात्मक उत्कृष्टता के कार्य करने की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिसका अपना विज्ञान है। इसके चरणों को समझते हुए श्रम के साथ विश्राम एवं आनन्द का उचित समावेश करते हुए हम जीवन को सहज रूप में सफलता की नई मंजिल तक पहुँचा सकते हैं। ❑

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्। प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः॥
अर्थात् - मनुष्य को सत्य बोलना चाहिए, लेकिन वह सत्य प्रिय होना चाहिए। अप्रिय सत्य व प्रिय असत्य नहीं बोलना चाहिए। यही सनातन धर्म है।

15 जुलाई विश्व युवा दिवस

जाग्रत हो रहा है युवा भारत

विश्व युवा कौशल दिवस की स्थापना संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 11 नवबर 2014 को श्रीलंका के प्रस्ताव पर की गयी थी। इसीलिए महासभा ने प्रतिवर्ष 15 जुलाई को विश्व युवा दिवस मनाने की घोषणा की। संयुक्त राष्ट्र ने विश्व के सभी देशों से यह आग्रह किया कि वे अपने देश में युवाओं के कौशल विकास में सहायता प्रदान करें ताकि वे युवा आगे चलकर बेहतर राष्ट्र बनाने में तथा विश्व के निर्माण में अपना योगदान दे सकें। 21वीं सदी की युवा पीढ़ी सारे विश्व में घूम-घूमकर अपनी सर्वोत्तम प्रतिभा का प्रदर्शन कर रही है।

आज की युवा पीढ़ी 21वीं सदी में वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा को साकार रूप प्रदान करने के उद्देश्य से तेजी से आगे बढ़ रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा नामित यह महत्त्वपूर्ण दिवस तकनीकी, व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए कौशल के विकास के महत्त्व पर अधिक जागरूकता और विश्व बन्धुत्व की भावना विकसित करने के लिए प्रयासरत है। यह उम्मीद की जाती है कि यह दुनिया भर के युवाओं के लिए युगानुकूल कौशल तथा उसके अनुरूप रोजगारों में वृद्धि करने में योगदान देगा।

संसार को आश्चर्यचकित कर देने वाले युवा संन्यासी स्वामी विवेकानंद अध्यात्म एवं विज्ञान के समन्वय एवं आर्थिक समृद्धि के प्रबल समर्थक थे। हम सभी भारतवासी 12 जनवरी को युवा स्वामी विवेकानंद का जन्मदिन राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में प्रत्येक वर्ष धूमधाम से मनाते हैं। 'उठो, जागो और तब तक मत रुको जब तक मंजिल प्राप्त न हो जाए' का संदेश देने वाले स्वामी विवेकानंद ही थे।

स्वामी जी ने युवाओं से कहा कि जीवन में एक विचार लें, उस विचार को अपनी जिंदगी बना लें। उसके बारे में सोचिये, उसके सपने देखिये, उस विचार के लिए, हमारा मन, हमारी मांसपेशियाँ, हमारे शरीर का हर एक अंग, सभी उस विचार से भरपूर हों और दूसरे सभी विचारों को छोड़ दें।

यही उच्चतम सफलता पाने का सबसे बेहतर तरीका है। उन्होंने सन् 1897 में युवाओं को संबोधित करते हुए कहा था कि दुनिया से बड़ी-बड़ी विजयी जातियाँ विदा हो चुकी हैं। हम भी महान विजेता रह चुके हैं। हमारी विजय की गाथा को महान सम्राट अशोक ने धर्म और आध्यात्मिकता की ही विजय गाथा बताया है। अब समय आ गया भारत फिर से वैज्ञानिक अध्यात्म के बलबूते 'जगद्गुरु' के रूप में राह से भटके विश्व का पथ प्रदर्शन करे।

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक तथा युवा देश है। भारत की लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या की आयु 14 वर्ष से अधिक लेकिन 40 वर्ष से कम है। यह एक ऐसा वर्ग है जो शारीरिक एवं मानसिक रूप से सबसे ज्यादा ताकतवर है। इसका कारण यह है कि हमारे देश की परम्परा योग और अध्यात्म की परंपरा रही है। योग और अध्यात्म की परम्परा में पले-बढ़े देश के युवा अपने परिवार, समाज, देश तथा विश्व के विकास के लिए हर संभव प्रयत्न कर रहे हैं। आज भारत का युवा अध्यात्म तथा विज्ञान के समन्वय के बलबूते विश्व के हर क्षेत्र में ऊँचाई को छू रहा है। उदाहरण के तौर पर, विश्व के सबसे महत्त्वपूर्ण नोबेल पुरस्कार को जीतने वाले 8 भारतीयों के विवरण कुछ इस प्रकार हैं-

महान कवि और रचयिता गुरुवर रवींद्रनाथ टैगोर नोबेल पुरस्कार पाने वाले एशिया एवं भारत के पहले व्यक्ति थे। उनको साहित्य के क्षेत्र में उनकी काव्य पुस्तक 'गीतांजलि' के लिए सन् 1913 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। महान वैज्ञानिक सर चंद्रशेखर वेंकटरमन को सन् 1930 में भौतिकी के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

भारतीय मूल के अमरीकी नागरिक डॉ. हरगोविंद खुराना को आनुवांशिक कोड (डीएनए) की व्याख्या करने के लिए चिकित्सा के क्षेत्र में अनुसंधान के लिए सन् 1968 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। अल्बीनियाई मूल की भारतीय मदर टेरेसा को 45 सालों

तक गरीब, असहाय और मरीजों की सेवा करने के लिए सन् 1979 में शांति के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

इसके अलावा डॉ. सुब्रह्मण्यम चंद्रशेखर को भौतिक शास्त्र के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए सन् 1983 में नोबेल पुरस्कार दिया गया। डॉ. चंद्रशेखर भारतीय मूल के अमरीकी नागरिक होने के साथ ही एक विख्यात खगोल भौतिकशास्त्री भी थे। श्री अमर्त्य सेन को अर्थशास्त्र में उनके योगदान के लिये सन् 1998 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। उन्होंने अकाल में भोजन की व्यवस्था के लिये अपना सिद्धान्त दिया था।

भारतीय मूल के अमरीकी नागरिक श्री वेंकटरमन रामाकृष्ण को सन् 2009 में रसायन शास्त्र के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। श्री कैलाश सत्यार्थी को सन् 2014 में बाल अधिकारों की रक्षा एवं बाल श्रम के विरुद्ध लड़ाई के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। उन्होंने बचपन बचाओ आन्दोलन की स्थापना की और विश्व भर के बच्चों के अधिकारों की रक्षा के लिए अच्छा कार्य कर रहे हैं। अभिजीत बनर्जी को सन् 2019 में अर्थशास्त्र का नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ। उन्हें विश्व में गरीबी के उन्मूलन हेतु किए गए प्रयास के लिए यह सम्मान प्रदान किया गया।

न्यूयार्क के एक समाचार के अनुसार तीन महिलाओं समेत भारतीय मूल के चार लोगों को विश्वविख्यात फॉर्च्यून मैगजीन ने व्यवसाय के क्षेत्र में 40 सबसे प्रभावशाली और प्रेरणादायक युवाओं की सूची में शामिल किया गया है। ये वे लोग हैं जिनकी उम्र 40 साल से कम है। इस सूची में इंस्टाग्राम के सह-संस्थापक और सीइओ केविन सिस्ट्राम (34) और फेसबुक के संस्थापक मार्क जुकरबर्ग (34) के बीच पहले पायदान के लिए मुकाबला बराबरी का रहा। फॉर्च्यून की अंडर 40 सूची में दोनों को पहले स्थान पर रखा गया है। वहीं अमेरिका की सबसे बड़ी वाहन निर्माता कंपनी जनरल मोटर्स की मुख्य वित्त अधिकारी भारतीय मूल की 39 वर्षीय सुश्री दिव्या सूर्यदेवरा इस सूची में चौथे पायदान पर रहीं।

इसके बाद विमेयो की सीईओ सुश्री अंजलि सूद (14वें), रॉबिन हुड के सह-संस्थापक और सह-सीईओ श्री बैजू भट्ट (24वें) और फीमेल फाउंडर्स फंड की संस्थापक सहयोगी सुश्री अनु दुग्गल (32वें) को भी इस सूची में रखा गया है। फॉर्च्यून मैगजीन ने पहली बार सबसे प्रभावशाली युवाओं की 'पूरक सम्मान सूची' तैयार की है। ये लोग वित्त और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बेहतरीन काम करके व्यवसाय में बदलाव ला रहे हैं।

इस सूची में रिप्पल के वरिष्ठ उपाध्यक्ष श्री आशीष बिड़ला, डिजिटल वॉलेट क्राइनबेस के मुख्य तकनीकी अधिकारी श्री बालाजी श्रीनिवासन, एमआईटी डिजिटल मुद्रा पहल की निदेशक सुश्री नेहा नरूला और क्राइनबेस की वरिष्ठ उपाध्यक्ष (परिचालन) सुश्री टीना भटनागर भी शामिल हैं। फॉर्च्यून मैगजीन ने व्यवसाय के क्षेत्र में सबसे प्रभावशाली और प्रेरणादायक युवाओं की सूची में तीन भारतीय- मास्टरकार्ड के सीइओ श्री अजय बंगा, माइक्रोसॉफ्ट के सीईओ श्री सत्या नडेला और हरमन इंटरनेशनल के चेयरमैन श्री दिनेश पालीवाल के नाम भी शामिल किए हैं।

न्यूयॉर्क के एक समाचार के अनुसार विश्वविख्यात टाइम मैगजीन ने दुनिया के 100 सबसे प्रभावशाली लोगों की सूची में तीन भारतीयों को शुमार किया है। इनमें रिलायंस इंडस्ट्रीज के चेयरमैन श्री मुकेश अंबानी, भारत की वकील अरुंधति काटजू और सुश्री मेनका गुरुस्वामी शामिल हैं। टाइम मैगजीन ने सन् 2019 के शीर्ष 100 सबसे प्रभावशाली लोगों की सूची जारी की। सूची में शीर्ष नेताओं, कलाकारों, दिग्गजों और आइकन शामिल हैं।

पूरे भारत में लगभग 40 करोड़ भारतीयों को विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत, सन् 2022 तक प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से 'कुशल भारत-कौशल भारत' योजना को शुरू किया गया है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य भारत के युवाओं के कौशल के विकास के लिये उन क्षेत्रों में अवसर प्रदान करना है जो कई वर्षों से अविकसित हैं। कौशल विकास योजना, केवल पैसा कमाना नहीं है बल्कि गरीबों के जीवन को आत्मविश्वास से भरना है।

नवयुग का नवीन दर्शन और नवीन विज्ञान है-वैज्ञानिक अध्यात्म। यह सारा विश्व हमारा है। संसार के सभी युवाओं को मिलकर विश्व को बदलना है, इसे भूल नहीं जाना है। सभी देश अब एक बनेंगे तथा सारे संसार के लिए एक जैसे कानून बनायेंगे। इससे ही इक्कीसवी सदी-उज्ज्वल भविष्य की संभावना साकार होगी। ❑

मानसिक एकाग्रता कुछ ऐसे साधें

चित्त की शांत, स्थिर एवं एकाग्र अवस्था एक ऐसी स्थिति होती है, जब मन सहज रूप में ग्रहणशील होता है, कम समय में बहुत कुछ सीख जाता है लेकिन इस अवस्था के प्रति जागरुकता के अभाव में अधिकांश लोग, विशेषकर विद्यार्थी इसका समुचित लाभ नहीं ले पाते। विद्यार्थियों की प्रायः ही यह शिकायत रहती है कि पढ़ाई में मन नहीं लग रहा, मन एकाग्र नहीं हो पा रहा जबकि मन की इस सहज रूप में ग्रहणशील अवस्था का सदुपयोग कर एकाग्रता की समस्या को काफी हद तक हल किया जा सकता है।

मन की एकाग्रता कई कारकों पर निर्भर करती है, जिनका अपना मनोविज्ञान है। इसके कुछ व्यावहारिक सूत्र इस प्रकार से हैं -

एकाग्रता हेतु विषय में रुचि का होना एक महत्त्वपूर्ण कारक है। यदि विषय में रुचि हो, तो सहज रूप में एकाग्रता सधती है। यदि किसी विद्यार्थी की क्रिकेट में बहुत रुचि है, तो उसे अपने लोकप्रिय खिलाड़ी के सारे रिकॉर्ड याद रहते हैं, जबकि वही विद्यार्थी रुचि के अभाव में इतिहास की तिथियों एवं आँकड़ों को याद करने में कठिनाई अनुभव करता है। यह विद्यार्थी की रुचि के महत्त्व को दर्शाता है। रुचि को उत्पन्न करने का एक बड़ा कारण विषय की जीवन में उपयोगिता एवं उसके लाभ की समझ है।

विषय की उपयोगिता समझ आ जाए तो फिर उसमें रुचि भी पैदा हो जाती है। यदि हम बड़ा अधिकारी बनना चाहते हैं, धनलाभ करना चाहते हैं, कोई प्रतिष्ठित स्थान पाना चाहते हैं, या जीवन में कुछ बड़ा करना चाहते हैं, तो स्वतः ही मन की शक्तियाँ उस दिशा में प्रवाहित हो उठती हैं, विचार करने लगती हैं। मानसिक ऊर्जा के उस दिशा में जाने पर उनसे जुड़े विषयों के प्रति स्वतः ही रुचि पैदा हो जाती है लेकिन मात्र भौतिक लाभ की सोच, मन की एकाग्रता एवं दीर्घकालीन सफलता के लिए पर्याप्त नहीं होती, इसके लिए जीवन का उच्च उद्देश्य भी स्पष्ट होना आवश्यक है।

एकाग्रता की गहनता एवं व्यापकता जीवन लक्ष्य की गहनता एवं व्यापकता पर निर्भर करती है। यदि जीवन का ध्येय भौतिक लाभ एवं सांसारिक महत्त्वाकांक्षाओं तक ही सीमित है तो इसके लिए सधी एकाग्रता की एक निश्चित सीमा होगी, जो परिस्थितियों के दबाव के आगे कभी भी बिखर सकती है। यह अधिक टिकाऊ हो, इसके लिए जीवन लक्ष्य का श्रेष्ठ एवं अधिक स्पष्ट होना अभीष्ट है।

अपनी स्वार्थपूर्ति एवं अहंतुष्टि के अतिरिक्त इसका व्यापक जनहित के साथ जुड़ा होना भी जरूरी है। जीवन लक्ष्य जितना उच्च होगा, उतनी ही व्यापकता एवं गहनता में फिर जीवन को समझने एवं साधने का प्रयास होगा और एकाग्रता भी फिर उसी अनुपात में स्थायी एवं स्थिर होगी।

एकाग्रता के लिए दिनचर्या का संतुलित होना आवश्यक है। इसमें शयन, जागरण, श्रम, विश्राम, नींद आदि सभी क्रमबद्ध हों, तो कार्य में मानसिक एकाग्रता सहज रूप से बनी रहती है। इनमें बरती गयी अतिवादिता मानसिक संतुलन को डगमगा देती है, जिससे मन का एकाग्र होना कठिन हो जाता है। वास्तव में शरीर के स्वास्थ्य के साथ एकाग्रता का बहुत ही गहरा सम्बन्ध है। अतः शरीर को जितना हो सके, उतना स्वस्थ रखने का प्रयास करना चाहिए।

उचित श्रम, निद्रा एवं विश्राम का एकाग्रता से गहरा सम्बन्ध है। श्रम जहाँ शरीर को स्वस्थ रखता है, इसके साथ कर्तव्यपालन का संतोष मन को सहज रूप से शांत, स्थिर एवं संतुलित रखता है। अथक श्रम के बाद अल्प विश्राम का मिश्रण व्यक्ति को स्फूर्तिवान बनाए रखता है और गहरी नींद तो एक अच्छे टॉनिक का काम करती है और मन को पूर्ण एकाग्रता की अवस्था में ला देती है।

इसके साथ ही एकाग्रता में बाधक तत्वों का बोध भी आवश्यक है, जिससे कि हम इनको दूर करने का प्रयास कर सकें -

अस्तव्यस्त दिनचर्या मानसिक एकाग्रता को प्राप्त कर पाने में एक बड़ा व्यवधान है, जो तनाव-अवसाद का कारण भी बनती है। दिनचर्या को क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित कर हम इसे दुरुस्त कर सकते हैं। इसके लिए समय पर सोने-जागने, कार्यों को प्राथमिकता के आधार पर निपटाने तथा समय सारणी बनाकर विषयवार पढ़ाई करने की व्यवस्था करना भी उचित रहता है।

इसके साथ ही गप्पबाजी एवं गलत संग-साथ एकाग्रता की प्राप्ति में बड़े व्यवधान हैं। यार-दोस्तों के बीच गप्पबाजी में पता ही नहीं चलता कि कितना समय बीत गया, साथ ही कब प्रपंच अर्थात परचर्चा एवं परनिंदा में उलझ गए, यह भी भान नहीं रहता। आज मोबाइल युग में स्मार्टफोन एक बड़ी चुनौती के रूप में हमारे सामने है। इसके मायाजाल में आज की हर पीढ़ी इस कदर उलझी हुई है कि मानसिक एकाग्रता की प्राप्ति उनके लिए एक बड़ी समस्या बनती जा रही है। अतः स्मार्ट फोन के अत्यधिक उपयोग से जितना बचा जा सके, उचित रहेगा तथा इसका संयत उपयोग भी अभीष्ट है।

दीर्घकाल तक एक ही तरह का कार्य करते रहना भी मन की एकाग्रता में बाधक बनता है। इसके लिए हम एक विषय से उकता जाने पर दूसरे विषय को ले सकते हैं। कार्य की विविधता मन की रुचि को भी बनाए रखेगी व ऐसे में सहज रूप से एकाग्रता भी संभव होगी, जिसका उपयोग हम अपनी परिस्थिति के अनुरूप कर सकते हैं। बहुत सारे कामों को हाथ में ले लेना भी मानसिक एकाग्रता में बाधक बनता है। अतः कार्यों को प्राथमिकता के आधार पर सूचीबद्ध करके इन्हें एक-एक करके निपटाने की व्यवस्था करें। इस तरह हर सफल कार्य के बाद कार्य की पूर्णता की संतुष्टि मिलती है व साथ ही हमारी एकाग्रता में भी वृद्धि होती है।

दूसरों के जीवन में अनावश्यक रुचि एवं दखलंदाजी भी मन की एकाग्रता में एक बड़ा व्यवधान रहती है। इससे एक तो मन बहिर्मुखी हो जाता है, अपने स्वधर्म से भटक जाता है तथा अनावश्यक कार्यों में उलझ भी जाता है। साथ ही ऐसे कार्य आंतरिक द्वन्द्व एवं तनाव का कारण भी बनते हैं जबकि एक विद्यार्थी को अपने काम से काम रखना चाहिए, अपने लक्ष्य पर सदैव केंद्रित रहना चाहिए। उपरोक्त सूत्रों को अपनाकर विद्यार्थी के लिए मानसिक एकाग्रता को सहजता से प्राप्त कर पाना संभव है।

❑

राजा विड़ाल मुनि वैवस्वत को प्रणाम करके चुपचाप बैठ गए। त्रिकालदर्शी गुरु ने जान लिया कि विड़ाल किसी गंभीर चिन्ता से व्याकुल हैं। उन्होंने पूछा- 'विड़ाल! तुम आज अशान्त से दिखते हो। तुम्हें कोई चिन्ता सता रही हो तो बताओ?' शिष्य ने अपनी अंतर्वेदना को प्रकट करते हुए कहा- 'देव! न जाने क्यों प्रजाजन अशान्त हैं, लोग धर्म और शान्ति से विमुख हो रहे हैं। धन-धान्य की कमी होती जा रही है, लोग परस्पर स्नेह-भाव से नहीं रहते, अपराध वृत्ति भी वृद्धि पर है।'

वैवस्वत ने कहा- 'वत्स! जिस देश में लोग कठोर परिश्रम से जी चुरावें, जो समाज श्रम को सम्मानपूर्ण स्थान न दे वहाँ श्री-समृद्धि कैसे रह सकती है? श्रम को ही 'तप' समझकर यदि साधना की जाये तो समाज के ये दोष स्वयमेव दूर हो जाएँ।' वस्तुतः श्रम ही वह देवता है जो सारी सिद्धियों का स्वामी है। आयुष्य के पूर्वार्द्ध में इसके संपादन हेतु ही विधाता ने मनुष्य को शक्तिसपन्न बनाया है। जब भी इसकी उपेक्षा होती है, तब समाज अव्यवस्थित हो जाता है।

मानवता के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द

स्वामी दयानन्द सरस्वती सत्य और सात्विकता के प्रतीक थे। वे हर प्रकार के आडम्बर से परे थे। सेवा उनका एकमात्र लक्ष्य था। परमात्मा ने उन्हें बौद्धिक बल और नैतिक बल उपहारस्वरूप दिया था। उन्होंने समाज की स्थिति का तथा पुस्तकों का स्वाध्याय भी खूब किया था। उनकी स्मरणशक्ति अद्भुत थी। वे सरल और स्पष्ट भाषा में व्याख्यान दिया करते थे। उनकी शैली मधुर और तर्कपूर्ण होती थी। उन्होंने सुप्तप्राय वैदिक धर्म को जगाया था। उसके खोए हुए गौरव को वापिस दिलाया था। उसके कायरता, भीरुता और अंधविश्वास को दूर किया था।

स्वामी दयानन्द ने घोषणा की कि आर्य लोग जो आजकल हिन्दू कहलाते हैं भारतवर्ष के ही मूल निवासी हैं। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि आर्य भारत में कहीं बाहर से आए थे। आर्यों का संस्कृत भाषा में साहित्य ही संसार का सबसे पुराना साहित्य है। संस्कृत के किसी ग्रंथ में नहीं लिखा है कि आर्य भारतवर्ष में कहीं बाहर से आकर बसे थे। इस देश का सबसे पहला नाम आर्यावर्त्त था अर्थात् आर्यों का देश। उससे पहले इसका कोई और नाम नहीं था। इस प्रकार उन्होंने भारतीयों के मनोबल को बढ़ाया।

स्वामी जी भारतवासियों की सभी कमियों और कमजोरियों के लिए अंधविश्वास एवं कुरीतियों को जिम्मेदार मानते थे। उन्होंने जन्म पर आधारित जाति-प्रथा, सती-प्रथा, विधवा विवाह आदि अनेक ऐसी कुरीतियाँ जिनके कारण भारतीय समाज कमजोर हुआ, उनका मुखर विरोध किया।

उन्होंने कहा कि ऐसी मान्यताएँ वेद विरुद्ध हैं। हिन्दू धर्म कच्चे धागे की तरह बन गया था जिसे हलके झटके से तोड़ा जा सकता था। महर्षि दयानन्द ने इन कुरीतियों का पुरजोर खंडन किया और वैदिक धर्म की श्रेष्ठता को प्रकट किया। उन्होंने भारतवासियों में आत्मविश्वास पैदा किया जिससे उन्हें अपने वैदिक धर्म में बने रहने की प्रेरणा मिली और भारतीय चिंतन स्थिर सुदृढ़ और मजबूत होता गया।

महर्षि दयानन्द मानते थे कि हमारा नाम आर्य है, हिन्दू नहीं। आर्य का अर्थ है श्रेष्ठ पुरुष। विदेशियों ने हमें हिन्दू नाम दिया है। स्वामी दयानंद, भगवान श्रीकृष्ण को एक महापुरुष मानते थे। सत्यार्थ प्रकाश में वे लिखते हैं-देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र धर्मात्माओं के समान है, जिसमें कोई अधर्म का आचरण नहीं है। श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरणोपर्यन्त कुछ भी अधर्म नहीं किया।

महाभारत के उद्योगपर्व (विदुरनीति) में एक श्लोक है-

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥

महात्मा विदुर धृतराष्ट्र से कहते हैं- हे राजन्! इस संसार में दूसरे को निरन्तर प्रसन्न करने के लिए प्रिय बोलने वाले प्रशंसक लोग बहुत हैं परन्तु सुनने में अप्रिय लगे और वह कल्याण करने वाला वचन हो वैसा कहने और सुनने वाला पुरुष दुर्लभ है। महर्षि दयानन्द ऐसे ही हितकारक वचन कहने वाले विरले मनुष्य थे। वे राजाओं-महाराजाओं के सामने, बड़े से बड़े अंग्रेज अफसरों की उपस्थिति की मौजूदगी में भी निर्भीक होकर सबके हित की सत्य बात कहा करते थे।

महर्षि दयानन्द ने राष्ट्रीय स्वाभिमान को जगाया, विशुद्ध भारतीयता पर बल दिया। सत्य-असत्य विवेक की प्रवृत्ति को जगाया, बुद्धिवाद को बढ़ावा दिया, अंधविश्वास और रूढ़िवाद का खंडन किया। स्वामी जी मूर्तिपूजा का विरोध करते थे। जुलाई 1869 की बात है। कानपुर में पं. गुरुप्रसाद ने प्रयागनारायण में 'कैलास' और 'बैकुण्ठ' नामक दो मन्दिर बहुत धन लगाकर बनवाए थे। स्वामी जी ने उनसे कहा था कि आपने लाखों रुपया व्यर्थ गँवा दिया। इससे अच्छा होता कि कान्यकुब्ज कन्याओं को जो 30-30 वर्ष की कुमारी बैठी हैं, विवाह करवा देते या कला-कौशल का कोई कारखाना खोलते जिससे देश और जाति का भला

होता। स्वामी जी का घर मित्र, शत्रु सबके लिए खुला था। वे सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करते थे। यदि कोई उनके साथ दुष्टता का व्यवहार करने लगता तो भी वे विनम्र ही बने रहते थे।

वे यह भी कहते थे- मेरा काम लोगों के मन-मंदिरों से मूर्तियाँ निकलवाना है, ईंट-पत्थर के मन्दिरों को तोड़ना-फोड़ना नहीं है। फर्रुखाबाद में एक दिन एक साध (मान्यतानुसार एक इतर जाति) स्वामी जी के लिए कढ़ी और चावल बनाकर लाया और उन्होंने उसे खा लिया। इस पर ब्राह्मणों ने कहा कि आप भ्रष्ट हो गये जो साधों के घर का भोजन खा लिया।

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट होता है-एक तो यदि किसी को दुःख देकर धन प्राप्त किया जाए और उससे अन्न आदि खरीद कर भोजन बनाया जाए, दूसरा भोजन मलिन हो या उसमें कोई मलिन वस्तु गिर जाए। साध लोगों का मेहनत का पैसा है, उससे प्राप्त किया हुआ भोजन उत्तम है।

महर्षि दयानन्द देश की एकता के लिए आवश्यक समझते थे कि सारे देश की भाषा हिन्दी हो। इसलिए वे अपने ग्रन्थों का किसी दूसरी भारतीय भाषा में अनुवाद नहीं करवाना चाहते थे। वे चाहते थे कि सभी देशवासी उनके ग्रंथों को हिन्दी में ही पढ़ें। वे मानते थे कि भारतवासियों के लिए हिन्दी भाषा सीख लेना कुछ कठिन नहीं है। जो इस देश में जन्म लेकर अपनी भाषा सीखने का परिश्रम नहीं करता उससे और क्या आशा की जा सकती है। उनके ग्रन्थों का अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में अनुवाद करवाने के वे विरोध में थे।

सन् 1870 में मिर्जापुर में स्वामी जी ने बनवारीलाल नामक एक व्यक्ति को अंग्रेजी सीखने के लिए और मैक्समूलरकृत वेदों का अंग्रेजी अनुवाद सुनने के लिए रखा था। एक दिन मोहनलाल पण्ड्या ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति कब होगी। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाए बिना ऐसा होना मुश्किल है। वेदों के संबन्ध में वे लिखते हैं- मैं वेदों में कोई बात युक्तिविरुद्ध या दोष की नहीं देखता और यही मेरा मत है।

महर्षि दयानन्द वेदों को ईश्वरकृत तथा सब सत्य विद्याओं की पुस्तक मानते थे। वे वेद पढ़ने का अधिकार सभी का मानते थे और वे मानते थे कि वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द का स्वाध्याय बहुत व्यापक था।

'भ्रान्तिनिवारण' पुस्तक में पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न को उत्तर देते हुए स्वामी दयानन्द लिखते हैं- अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेकर पूर्व मीमांसापर्यन्त लगभग तीन हजार ग्रन्थों का अध्ययन मैंने किया है। इससे स्पष्ट होता है कि उनका अध्ययन कितना व्यापक और विशाल था।

सत्यार्थ प्रकाश के संबन्ध में प्रसिद्ध देशभक्त लाला हरदयाल के विचार थे- इस महान ग्रंथ के अध्ययन से मेरी विचारधारा बदल गई है। सोई हुई जाति के स्वाभिमान को जाग्रत् करने वाला यह ग्रन्थ अद्वितीय है। महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के अंत में मनुष्य की परिभाषा करते हुए लिखते हैं- मनुष्य उसी को कहते हैं जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुख और हानि-लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपनी सामर्थ्य से अन्याय करने वालों के बल की हानि और न्याय करने वालों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भले ही चले क्यों न जायें, परन्तु इस मानवोचित धर्म से उसे पृथक कभी नहीं होना चाहिए।

महाराज भर्तृहरि जी का एक श्लोक है-
निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥
अर्थात् नीति को जानने वाले लोग चाहे निन्दा करें या प्रशंसा करें, धन आए या जाए, मृत्यु अभी आ जाए या चिरकाल के बाद आए, परन्तु धैर्यवान् लोगों के पग न्याय के मार्ग से कभी विचलित नहीं होते।

यह नीति वचन महर्षि दयानन्द के जीवन पर पूरी तरह घटित होता है। सभी प्रकार की विघ्न-बाधाओं, खतरों ओर प्रलोभनों से टक्कर लेते हुए स्वामी जी सत्य और न्याय के प्रचार में लगे रहे। महर्षि दयानंद मानवता के उद्धारक एवं धर्म व संस्कृति के उन्नायक थे।

❑

कर्मों की गति

एक बार देवर्षि नारद अपने शिष्य तुबुरू के साथ कहीं जा रहे थे। गर्मी का महीना था। चलते-चलते उनको प्यास लगी। थोड़ी दूरी पर ही नारद जी को एक प्याऊ दीख पड़ा। उन्होंने उस प्याऊ से पानी पिया और कुछ दूर जाकर एक पीपल वृक्ष की छाया में बैठ गये। वे अभी बैठे ही थे कि अचानक एक कसाई वहाँ से 25-30 बकरों के झुण्ड को लेकर गुजरा। उस झुण्ड से एक बकरा सहज ही बाहर निकल आया और वहीं किनारे की एक दुकान पर चढ़कर वहाँ रखे कुछ अनाज के दाने खाने लगा। वह दुकान शहर के मशहूर सेठ की थी। अपनी दुकान में रखे अन्न को बकरे द्वारा खाया जाता देखकर उस सेठ का पारा चढ़ गया। उसने उस बकरे को पकड़ लिया और जोर से उसके कान खींचते हुये मारने लगा। वह बकरा कराहने लगा। अंततः उस सेठ ने उस बकरे को पकड़कर कसाई को वापस सौंप दिया। साथ ही उस सेठ ने कसाई से कहा कि जब तुम इस बकरे को हलाल करोगे तो इसे हलाल कर इसका सिर मुझे सौंप देना। कसाई के यह पूछने पर कि आप इसका सिर क्यों चाहते हैं? उस सेठ ने कहा कि इसने मेरी दुकान में रखी बोरियों से अन्न खाया है इसलिये मैं बदले में इसका सिर चाहता हूँ।

देवर्षि नारद यह सारा माजरा देख रहे थे। नारद जी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि आखिर यह सेठ थोड़े से अन्न खाने के कारण इस बकरे के पीछे क्यों पड़ा है? आखिर बात क्या है? नारद जी ने ध्यान लगाकर देखा और वे सारा माजरा समझ गये। वे जोर से हँस पड़े, तब तुबुरू ने पूछा-गुरुवर! आप क्यों हँस रहे हैं? जब उस बकरे को सेठ के हाथों मार पड़ रही थी तब आप दुःखी हो गये थे, पर ध्यान करने के बाद आप हँस रहे हैं। भला इसका क्या राज है? नारद जी ने उत्तर दिया-यह सब कर्मों का ही फल है वत्स! इस दुकान पर जो नाम लिखा है 'शागाल्चंद सेठ' वह सेठ स्वयं यह बकरा ही है। शिष्य को नारद जी की बात सुनकर बड़ी हैरानी हुई कि भला यह बकरा शागाल्चंद सेठ कैसे हो सकता है। सेठ तो दुकान पर बैठा है। तब नारद जी ने कहा-वत्स! शागाल्चंद सेठ की मृत्यु कुछ ही वर्ष पूर्व हो गयी थी। अभी दुकान पर जो सेठ बैठा है वह शागाल्चंद का बेटा है। मृत्यु के बाद सेठ शागाल्चंद ने ही बकरे के रूप में जन्म लिया है। सेठ ही मरकर बकरा बना है और इस दुकान से अपने पुराने संबंध और मोह और आसक्ति होने के कारण ही वह उस दुकान में जाकर अन्न खाने लगा था पर मैं देख रहा हूँ कि उसके बेटे ने ही उसको मारकर भगा दिया और इतना ही नहीं उसने उसे कसाई के भी हवाले कर दिया और उसके प्रति उसका रोष इतना अधिक है कि वह उसका सिर चाहता है।

नारद बोले- मैंने देखा कि 30 बकरों में से कोई दुकान पर नहीं गया पर इस बकरे का उस दुकान से पुराना संबंध था, इसलिये वह वहाँ गया। मैंने जब ध्यान करके देखा तो पता चला कि इस बकरे का इस दुकान से पुराना संबंध है और इस दुकान का वर्तमान दुकानदार सेठ इसी का बेटा है। जिस बेटे के लिये शागाल्चंद सेठ ने इतना कमाया था, वही बेटा आज थोड़ा सा अन्न भी उसे खाने को नहीं दे रहा और गलती से कुछ खा भी लिया तो उसे कसाई के हवाले करके उससे अपने बाप का सिर माँग रहा है। सचमुच कर्म की ऐसी गति देखकर और मनुष्य के मोह पर मुझे हँसी आ रही है।

यह कहानी सचमुच हमें यह प्रेरणा देती है कि कर्म की गति बड़ी गहन है। मनुष्य को अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। मृत्यु के बाद इस जन्म के रिश्ते-नाते तो मिट जाते हैं पर हमारे द्वारा किये गये कर्म हमारा पीछा अगले जन्मों तक करते हैं, इसलिये परमपिता परमेश्वर के साथ हमारा रिश्ता प्रगाढ़ होना चाहिए क्योंकि वही रिश्ता शाश्वत और सनातन है। हमें ईश्वर को कभी नहीं भूलना चाहिये। अपने सांसारिक, सामाजिक, पारिवारिक दायित्वों का पालन करते हुये हमें सदा ईश्वर का चिंतन, स्मरण, ध्यान करते रहना चाहिए क्योंकि ईश्वर ही हमें सभी प्रकार के भवबंधनों व दुःखों से मुक्त कर सकते हैं। ❑

भूत-प्रेतों का रहस्य

अक्सर हमें भूत-प्रेतों की कहानियाँ पढ़ने-सुनने को मिलती हैं। भूत-प्रेतों का अस्तित्व है या नहीं यह हमेशा से ही कौतुक एवं अचरज का विषय रहा है। कुछ लोग भूत-प्रेतों के अस्तित्व को मानते हैं और कुछ नहीं भी मानते हैं। शास्त्रों के अनुसार 84 लाख योनियों में एक योनि भूत-प्रेतों की भी है। गरुड़ पुराण में भूत-प्रेतों के विषय में विस्तृत वर्णन पढ़ने को मिलता है। श्रीमद्भागवत पुराण में भी धुंधकारी के प्रेत बन जाने का वर्णन मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास जी को एक भूत ने ही बताया था कि उन्हें हनुमान जी कहाँ मिलेंगे। एक भूत ने ही यक्ष के रूप में युधिष्ठिर से कई तरह के प्रश्न पूछे थे। पितृपक्ष में हिन्दू अपने पितरों का तर्पण करते हैं।

इन सारे उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि पितरों का अस्तित्व आत्मा अथवा भूत-प्रेत के रूप में होता है। शास्त्रों के अनुसार जो व्यक्ति भूख, प्यास, काम-वासना, क्रोध, लोभ, द्वेष आदि इच्छायें और भावनायें लेकर मरा है या फिर दुर्घटना, हत्या, आत्महत्या आदि से मरा है तो वह भूत-प्रेत बनकर भटकता है। ऐसे व्यक्तियों की आत्मा को तृप्त करने के लिये श्राद्ध और तर्पण आदि किये जाते हैं। जो लोग अपने स्वजनों और पितरों का श्राद्ध और तर्पण नहीं करते वे उन अतृप्त आत्माओं द्वारा परेशान भी होते हैं।

कहते हैं कि ज्यादा शोर और उजाले वाले स्थानों से यह दूर रहते हैं, इसलिये इन्हें कृष्णपक्ष ज्यादा पसंद है और त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा अमावस्या को ये ज्यादा सक्रिय रहते हैं। भूत-प्रेत प्रायः उन स्थानों पर दिखते हैं जिन स्थानों से मृतक का अपने जीवनकाल में संबंध था या जो स्थान एकांत में स्थित होते हैं। बहुत दिनों से खाली पड़े घर इत्यादि में भी भूत-प्रेतों का निवास माना जाता है।

भूतों की विभिन्न श्रेणियाँ होती हैं, यथा भूत-प्रेत, पिशाच, चुड़ैल, राक्षस आदि। प्रेत योनि में जाने वाली आत्माएँ अदृश्य और बलवान् हो जाती हैं। सभी प्रेत अदृश्य तो होते हैं पर बलवान् नहीं क्योंकि यह उनके पूर्वजन्म के कर्म और गति पर निर्भर करता है। उनके शरीर धुंधले तथा वायु से बने होते हैं। वे स्थूल शरीर से विहीन होते हैं तथा सूक्ष्म शरीर का प्रयोग करते हैं। कुछ भूत-प्रेत अपने सूक्ष्म शरीर की ताकत को समझकर उसका इस्तेमाल करना मात्र जानते हैं। कुछ भूतों में स्पर्श करने की ताकत होती है तो कुछ में नहीं। जो भूत स्पर्श करने की ताकत रखते हैं, वे बड़े से बड़े वृक्षों को भी उखाड़ कर फेंक सकते हैं। ऐसे भूत यदि स्वभावतः बुरे हैं तो खतरनाक होते हैं। ये किसी भी देहधारी व्यक्ति को अपने होने का एहसास करा देते हैं।

इस तरह के भूतों की मानसिक शक्ति इतनी बलशाली होती है कि वे किसी भी व्यक्ति का दिमाग पलट कर, प्रभावित कर उससे अच्छे या बुरे कार्य करा सकते हैं। वे किसी भी व्यक्ति के शरीर का इस्तेमाल करना भी जानते हैं। वे किसी व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर अपनी दमित इच्छाओं, भावनाओं, वासनाओं को अभिव्यक्त कर उससे उनकी पूर्ति करवा सकते हैं पर वे मुख्य रूप से ऐसे लोगों को ही अपना शिकार बना पाते हैं जो धर्म-कर्म से विलग रहकर बुरे और पाप कर्म आदि में लिप्त रहते हैं पर तेजस्वी, आत्मबल से ओत-प्रोत, संध्यावंदन, गायत्री जप, हनुमान चालीसा पाठ और गुरु की सेवा में रत रहने वाले लोगों को वे प्रभावित नहीं कर पाते तथा उनको अपना शिकार नहीं बना सकते। ऐसे लोगों के, ऐसे साधकों के आध्यात्मिक ओज, तेज व वर्चस का वे सामना नहीं कर सकते। इसलिये प्रेतबाधा से पीड़ित लोगों को गायत्री जप, यज्ञ, हनुमान चालीसा, बजरंगबाण आदि धार्मिक-आध्यात्मिक क्रियाओं द्वारा प्रेत-बाधा से मुक्त किया जाता है।

भूत-प्रेत, सुख-दुःख का अनुभव तो करते हैं पर वे स्वयं उनको अभिव्यक्त नहीं कर सकते। प्रेतात्मायें अपना प्रारब्ध भोगकर ही प्रेत योनि से मुक्त होकर मानव आदि अन्य

योनियों में जन्म लेते हैं। वासना के अच्छे और बुरे भाव के कारण मृतात्माओं को भी अच्छा और बुरा माना गया है। जहाँ अच्छी मृतात्माओं का वास होता है उसे पितृलोक कहते हैं तो जहाँ बुरी मृतात्माओं का वास होता है उसे प्रेतलोक आदि कहते हैं। बुरी और अच्छी मृतात्मायें ऐसे लोगों को तलाश करती हैं जो उनकी इच्छाओं, वासनाओं की पूर्ति कर सकते हों अर्थात् जो कुकर्मी, अधर्मी, पापी और वासनामय जीवन जीने वाले लोग हैं। अच्छी मृतात्मायें, पवित्र, धार्मिक, आध्यात्मिक प्रवृत्ति के लोगों के माध्यम से अपनी इच्छायें पूर्ण करना चाहती हैं। अच्छी मृतात्मायें अच्छे कर्म करने वालों के माध्यम से तृप्त होकर उन्हें भी तृप्त करती हैं, उन्हें अपना आशीष देती हैं और बुरी मृतात्मायें बुरे कर्म करने वालों के माध्यम से तृप्त होकर उन्हें बुराई के लिये प्रेरित करती हैं। इसलिये हमें हमेशा शुभ कर्म, पवित्र कर्म, ईश्वरभक्ति, गुरुभक्ति आदि श्रेष्ठ कर्मों में रत रहना चाहिए जिससे कि हम बुरी मृतात्माओं के प्रभाव से बचे रह सकें एवं आत्मकल्याण करने के साथ-साथ दूसरों के कल्याण के भी माध्यम बन सकें। ❑

मगध देश के राजा चित्रांगद वनविहार हेतु निकले। वहाँ वन में उन्होंने महात्मा की एक कुटिया देखी। राजा ने उन्हें निर्धन समझकर उनके पास धन भिजवाया पर उन महात्मा ने लौटा दिया। तब राजा ने उनकी कुटिया में जाकर उनसे पूछा- 'महाराज! आपने हमारा धन क्यों अस्वीकार कर दिया, आपकी कुछ सहायता हो जाती।'

महात्मा हँसकर बोले- 'मेरे पास पर्याप्त धन है।' राजा ने कुटिया में चारों ओर नजर घुमाकर देखा कि वहाँ केवल एक आसन, एक घड़ा व एक चादर थी। राजा ने कहा- 'मुझे तो कुछ दिखाई नहीं देता। आपका धन कहाँ है?' वे महात्मा राजा का कल्याण चाहते थे इसलिए उन्होंने राजा के कान में कहा- 'मैं रसायनी विद्या जानता हूँ। किसी भी धातु से सोना बना सकता हूँ और इसलिए मुझे जब धन की आवश्यकता होगी, तब बना लूँगा।' यह सुनकर राजा बेचैन हो गया। वह महात्मा से बोला- 'महाराज! कृपया मुझे वह विद्या सिखा दीजिये ताकि मैं प्रजा का कल्याण कर सकूँ।'

महात्मा ने कहा- 'इसके लिए तुम्हें एक वर्ष तक मेरे पास मेरा प्रवचन ध्यानपूर्वक सुनना होगा। एक वर्ष उपरांत मैं तुम्हें वह विद्या सिखा दूँगा।' राजा धन के लोभ में नित्य आने लगा। धीरे-धीरे उसका जीवन रूपांतरित होने लगा। एक वर्ष बाद महात्मा बोले- 'विद्या सीखोगे?' राजा बोले- 'आपकी कृपा से अब तो मैं स्वयं ही रसायन बन गया हूँ। अब किसी नश्वर विद्या को सीखकर क्या करूँगा?' इस तरह उन महात्मा ने राजा को आत्मकल्याण का मार्ग दिखा दिया।

मानसून में रखें ये विशेष ध्यान

मानसून आने के साथ ही जल और मच्छरजनित बीमारियों की शुरुआत हो जाती है। बारिश के दौरान अधिकांश जगहों पर पानी में नुकसानदेह जैविक व रासायनिक तत्वों की अशुद्धियाँ बढ़ जाती हैं।

देश की राजधानी दिल्ली में ही बीते साल पानी के नमूनों में पचास फीसदी नमूने निर्धारित मानकों पर खरे नहीं पाए गए। जैविक अशुद्धियों के साथ ही पानी में क्लोराइड की मात्रा कहीं कम और कहीं जरूरत से अधिक देखी जाती है। जिन शहरों, कस्बों, गाँवों में पाइपलाइन से पानी की आपूर्ति नहीं होती वहाँ मानसून के दौरान भूमिगत जल अशुद्ध हो जाता है।

कूड़े का सही ढंग से निस्तारण न हो पाना, जलभराव, सीवेज लीकेज आदि कुछ ऐसी समस्याएँ हैं, जो बारिश में बीमारियों की मुख्य वजह बनती हैं। जलभराव से मच्छर पैदा होते हैं, जो बीमारियाँ फैलाते हैं। इन परेशानियों के बावजूद मानसून के बाद मिली गर्मी से राहत और खुशी को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। अगर हम सजग रहें तो न केवल बरसात में आमतौर पर होने वाली बीमारियों, परेशानियों से खुद को बचा सकते हैं, बल्कि स्वस्थ रहकर बारिश का भरपूर आनंद भी उठा सकते हैं।

बारिश का पानी भूमिगत जल और पाइप लाइन से आपूर्ति किए जाने वाले पानी को दूषित करता है। दरअसल गाँवों में खुले में शौच की वजह से बारिश में पानी के अशुद्ध होने की आशंका दस गुना तक बढ़ जाती है। वहीं शहरों में सीवेज में लीकेज की वजह से आपूर्ति होने वाले पानी के अशुद्ध होने की आशंका रहती है। इसलिए बारिश में पानी की स्वच्छता के लिए सजग रहना और अधिक जरूरी हो जाता है। इस तरह की कुछ अशुद्धियाँ निम्नांकित हैं:

जैविक अशुद्धियाँ-विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं से मिश्रित पानी की अशुद्धियों को जैविक अशुद्धि माना जाता है। बारिश में पानी की यह जैविक अशुद्धि आसानी से घरों तक पहुँच जाती है, जिससे डायरिया, पेचिश, टायफायड, हैजा आदि के लिए जिम्मेदार ई0 कोलाई जीवाणु शरीर तक पहुँच जाते हैं।

पेयजल और स्वच्छता विभाग, भारत सरकार द्वारा यूनिसेफ और श्रीराम इंस्टीट्यूट ऑफ इंडस्ट्रियल रिसर्च के साथ किए गए एक अध्ययन की रिपोर्ट के अनुसार बारिश के मौसम में उड़ीसा, बिहार और पश्चिम बंगाल के 240 गाँवों के पानी के नमूनों की जाँच की गई। इनमें 121 गाँव ऐसे थे, जिन्हें अभी भी शौच से मुक्त घोषित नहीं किया गया था जबकि 119 गाँव ऐसे थे जो ओडीएफ यानी खुले में शौचमुक्त थे।

उक्त रिपोर्ट के अनुसार जहाँ अभी भी खुले में शौच किया जा रहा है, उस गाँव में ओडीएफ मुक्त गाँव की अपेक्षा 3.54 गुना अधिक दूषित जल पाया गया। पानी की यह अशुद्धि भूमिगत और साधारण नल- दोनों के पानी में बराबर पाई गई। घरों में संरक्षित पानी में अशुद्धियाँ 1.63 गुना पाई गईं।

मिश्रित अशुद्धि-बारिश के दौरान नदियों और एकत्र जलस्रोत के संसाधनों में मिश्रित अशुद्धियाँ देखी जाती हैं, जिनमें ऑर्गेनिक वेस्ट मैटर और अमिनो एसिड की अशुद्धि प्रमुख हैं। दूषित हवा या प्रदूषण के कारण पानी में मिली अशुद्धियों, फैक्ट्रियों से निकला कचरा या डंपिंग ग्राउंड का पानी, नदियों के पानी में मृत पशु या सड़े-गले पौधों से होने वाली अशुद्धियाँ मिश्रित अशुद्धियाँ कहलाती हैं। शहरों में जहाँ नदी नालों का पानी, सीवेज प्लांट के जरिए शुद्ध करके घरों तक पहुँचाया जाता है, वहाँ बारिश के दिनों में इस तरह की अशुद्धियाँ पाई जाती हैं।

दूषित पानी के दुष्परिणाम- नेशनल ब्यूरो ऑफ हेल्थ इंटेलिजेंस के अनुसार पिछले पाँच सालों में दूषित पानी की वजह से होने वाली मौत का आँकड़ा बढ़ा है। कॉलेरा (हैजा), एक्यूट डायरिया,

टायफायड और वायरल हेपेटाइटिस से सन् 2014 से 2018 तक कुल 11,768 लोगों की जानें गईं। इनमें हैजे से 21, एक्यूट डयरिया से 7057, टायफायड से 2283 और वायरल हेपेटाइटिस से 2407 लोगों की मौतें हुईं। पेयजल एवं स्वच्छता मंत्रालय के अनुसार पिछले पाँच सालों में पानी में जियोजेनिक (प्रकृतिजनित) और एंथ्रोपोजेनिक (मानवजनित) दो विशेष तरह की अशुद्धियाँ अधिक देखी गईं। इसके लिए केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के साथ मिलकर मुहिम चलाने की जरूरत है।

मच्छरजनित रोग और सावधानियाँ- राष्ट्रीय मच्छरजनित रोग नियंत्रण कार्यक्रम में तहत रोगाणुवाहक बीमारियों को भी शामिल किया गया। इसमें मच्छरजनित बीमारियाँ पहले नंबर पर हैं। सभी तरह के संक्रमण से होने वाली कुल बीमारियों में 17 प्रतिशत बीमारियाँ मच्छरजनित होती हैं। ज्यादातर मच्छरजनित बीमारियाँ मादा मच्छरों के काटने से फैलती हैं। विश्वभर में हर साल चालीस हजार लोगों की मौतें मच्छरजनित बीमारियों की वजह से होती हैं। सन् 2003-2004 में इस कार्यक्रम को शुरू किया गया था, जिसमें मलेरिया, फाइलेरिया, कालाबुखार, डेंगू, जापानीज़ इंसेफलाइटिस और चिकुनगुनिया को शामिल किया गया।

मानसून में घरों के गमले, एक्वेरियम में रखे पानी में भी मच्छरों के लार्वा पनप जाते हैं, जिन पर अक्सर हमारा ध्यान नहीं जा पाता है। मानसून आने से पूर्व सबसे पहले सभी गमलों को निकालकर टैरेस या फिर छत पर रख देना चाहिए। इंडोर प्लांट का पानी भी रोज बदलते रहें। पक्षियों के लिए रखे पानी के बर्तन को रोजाना साफ करें। डेंगू, चिकुनगुनिया से बचाव के लिए स्कूलों में पाठ्यक्रम लागू किया जा चुका है, जिससे बच्चों को मच्छरजनित बीमारियों के बारे में जागरूक किया जा सके। इसके अतिरिक्त निम्न सावधानियाँ भी रखी जानी चाहिए-

आँखों की हिफाजत- जरूरी नहीं कि मानसून में हमेशा बारिश ही होती रहे। इस दौरान निकलने वाली धूप की अल्ट्रावायलेट किरणें (यूवी रेज) जून महीने की यूवी किरणों से कहीं अधिक तेज व चुभने वाली होती हैं। इससे आँखों में संक्रमण खासकर कन्जंक्टिवाइटिस होने का खतरा रहता है। जिस व्यक्ति को कन्जंक्टिवाइटिस हो तो उसकी इस्तेमाल की जाने वाली वस्तुओं जैसे तौलिया आदि का इस्तेमाल न करें।

खानपान पर दें ध्यान- बाजार की तली-भुनी चीजों से दूर रहें। इसी तरह बाजार से मौसमी फलों का चयन सावधानी से करें। उन्हें अच्छी तरह धोकर खाएँ। कटे-खुले फल भी संक्रमण को उत्पन्न कर सकते हैं। इसके लिए आयुर्वेद में बताए गए वर्षा ऋतु के खानपान को अपनाया जा सकता है। आयुर्वेद में मानसून को संधि ऋतु भी कहा जाता है। अधिक स्टार्च वाली सब्जियाँ जैसे भिंडी और अरबी पेट से संबंधित दिक्कतें बढ़ा सकती हैं, जबकि अंदरूनी रूप से जीवाणुग्रस्त मौसमी फल जैसे आम और लीची आदि भी डायरिया का कारण हो सकते हैं। इस मौसम में दही का सेवन न करें। दही के विकल्प के रूप में दूध का सेवन करें। बीमारी से दूर रहने के लिए स्वच्छता रखना भी जरूरी है, जिसकी कमी से बीमारी फैलाने वाले सूक्ष्म कीटाणु तेजी से घर में अपनी जगह बना लेते हैं। कुछ जरूरी बातें- जुकाम होने पर सिर व पसली की हल्की मालिश करें। आहार में दूध को जरूर शामिल करें। यदि कफ की समस्या है तो स्टार्च वाली सब्जियों का इस्तेमाल कम करें। अधिक देर तक हाथ व पैरों को बारिश के पानी के संपर्क में न रहने दें। अंगुलियों के बीच में नारियल का तेल लगाएँ। घर में यदि पालतू पशु हैं तो उन्हें बिल्कुल न भीगने दें। इस मौसम में चेहरे पर तेल का प्रयोग न करें। बालों का ध्यान रखें क्योंकि बारिश में सबसे अधिक डैंड्रफ की समस्या होती है। वर्षा ऋतु अत्यन्त सुहानी होती है। इस मौसम का आनन्द उठाने के लिए हमें इस दौरान होने वाली समस्याओं के प्रति जागरूक रहने की आवश्यकता है। ❑

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परिपीडनाय। खलस्य साधोर्विपरीतमेतज्ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

अर्थात् - दुष्ट की विद्या विवाद के लिए, धन मद के लिए और शक्ति दूसरों को कष्ट देने के लिए होते हैं। सज्जन पुरुष के लिए ये तीनों विपरीत होते हैं। विद्या ज्ञान के लिए, धन दान के लिए और शक्ति दूसरों की रक्षा के लिए होते हैं।

टीम वर्क की महत्ता

टीम वर्क बड़े से बड़े कार्यों को आसान बना देता है, कठिन से कठिन कार्यों को सरल बना देता है। इसके लिए सबसे ज्यादा जरूरी है- उद्देश्य के अनुरूप टीम के सदस्यों का चुनाव, जिनमें उपयुक्त योग्यता, कुशलता, सामंजस्य, सहयोग आदि का उचित मेल हो। यदि उद्देश्य को ध्यान में न रखकर टीम के सदस्यों का चुनाव किया जाता है, तब उससे टीम तो बन जाती है, लेकिन उस टीम से कोई भी कार्य ठीक ढंग से पूरा नहीं हो पाता। यदि किसी टीम में सदस्यों का सही ढंग से चुनाव नहीं हुआ है, उनमें तालमेल नहीं है, उनकी योग्यता में कमी है, तो छोटा से छोटा व सरल कार्य भी टीम वर्क से पूरा नहीं हो पाता।

टीम यानि कुछ चुने हुए लोगों का ऐसा ग्रुप, जिनमें कार्य के अनुरूप योग्यता व कुशलता हो, जिनमें अपनी टीम के प्रति समर्पण हो, एकता हो, सामंजस्य हो, जिसमें मुख्य रूप से टीमलीडर का दिमाग सक्रिय हो और उसके अनुसार कार्य करने के लिए टीम के सदस्यों का साथ हो, उनका पूरा सहयोग हो। ये भी जरूरी है कि टीम के सदस्य टीम के लक्ष्य के प्रति एकाग्र हों। टीम यानि एक ऐसा ढाँचा, जिसमें कम या अधिक लोग शामिल हो सकते हों लेकिन उन सब लोगों में इतनी समझ हो, कि वे एक शरीर व एक मन होकर कार्य करें।

जिस तरह से हमारे शरीर में कई सारे अंग-अवयव हैं और वो सब हमारे मन-मस्तिष्क से संचालित हैं, उसी तरह टीम के सदस्य जब अपनी बात टीमलीडर तक पहुँचाते हैं और टीमलीडर सही निर्णय लेते हुए उनकी समस्याओं का समाधान करते हुए कार्ययोजना टीम के सदस्यों के पास भेजते हैं, तब ही कार्य आगे बढ़ता है। टीम के सदस्य जब तक टीमलीडर की बात नहीं सुनते, उसके अनुसार कार्य नहीं करते, तब तक टीम वर्क पूरा नहीं हो सकता।

हमारे शरीर के विभिन्न अंग-अवयव जो भी कार्य करते हैं, वो मौलिक हैं, उनका कार्य कोई दूसरा नहीं कर सकता। जैसे देखने का कार्य आँखें करती हैं, कान या नाक नहीं। सुनने का कार्य कान करते हैं, आँख या मुँह नहीं। यदि हमारे अंग-अवयवों में गड़बड़ी आ जाए और वे अपना कार्य ठीक ढंग से न करें, तो हम कोई भी कार्य ठीक ढंग से नहीं कर पाते, स्वयं को बीमार महसूस करते हैं और असहाय पाते हैं। इसी तरह से किसी टीम के अंदर यदि टीम के सदस्य आपस में भेदभाव रखने लगें या स्वयं को विशेष समझने लगें और स्वयं को सबसे अधिक योग्य मानने लगें, या टीम में स्वयं को दूसरों से अधिक योग्य साबित करने की कोशिश करने लगें, तो ऐसी टीम में कोई भी कार्य अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाएगा। ऐसी टीम अन्य टीमों से प्रतियोगिता में सुनिश्चित रूप से हार जाएगी।

हर व्यक्ति का अपना एक स्वाभिमान होता है, अपनी प्रतिभा होती है, जिसे वह प्रदर्शित करना चाहता है, लेकिन किसी टीम में शामिल होकर अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित करने के लिए उसे अपनी टीम के सदस्यों से ही प्रतियोगिता करनी होगी और ऐसा करने से टीम-वर्क नहीं हो पाएगा। टीम वर्क करने के लिए एक-दूसरे का सहयोग करना, एक दूसरे को आगे बढ़ाने में अपना पूरा सहयोग देना, टीम की प्रतिभा को उभारने हेतु अपना सहयोग देना, टीम में सामंजस्य व एकता बनाए रखना, गलतफहमियों को दूर करना आदि बहुत जरूरी है।

टीम यानि कुछ लोगों द्वारा एक समूह में इस तरह जुड़कर कार्य करना, मानो वे एक ही हों, एक शक्ति, एक शरीर हों। जब ऐसी भावना के साथ कोई भी टीम कार्य करती है, तो उसकी कार्यक्षमता कई गुना बढ़ जाती है लेकिन किसी भी टीम की सफलता उसके टीम के सदस्यों के साथ-साथ टीम के नेतृत्व पर भी निर्भर करती है। यदि टीम के सदस्य अपने कार्यों में बहुत योग्य हैं, लेकिन टीमलीडर अयोग्य है, तो भी टीम अपने कार्यों में असफल होती है।

इसलिए किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य को करने के लिए टीम बनाने के साथ-साथ उपयुक्त व योग्य टीमलीडर का चुनाव करना बहुत जरूरी है। एक ऐसा टीमलीडर, जो सबसे घुल-मिल

जाए, जो सबको समझे, जो सबकी योग्यताओं से अवगत हो, जो टीम के सदस्यों की योग्यता के अनुरूप उन्हें कार्य दे, कार्यों का भलीभाँति समय-समय पर निरीक्षण करता रहे, जो अपनी टीम की प्रतिभा को निखारने व विकसित करने में सदैव प्रयासरत रहे, जो अपनी टीम की कमियों को स्वीकारे और उन्हें दूर करने हेतु प्रयास करे। इसके साथ ही अपनी टीम की खूबियों को पहचाने और उसे बढ़ाने हेतु टीम के सदस्यों को प्रोत्साहित भी करे।

टीमलीडर ऐसा होना चाहिए, जो टीम के सदस्यों को सकारात्मक दृष्टिकोण दे, उनका आत्मविश्वास व उत्साह बढ़ाए, उन्हें भरोसा दे, संबल दे, उन पर विश्वास करे तथा उनकी कार्यक्षमता को निखारने हेतु प्रयास करे। यदि टीम के सदस्यों में आपसी कड़वाहट पैदा होती है, तो उसे दूर करने का प्रयास करे और टीम के सदस्यों को मिलजुलकर रहने की सीख दे। जो टीमलीडर अपनी टीम के सदस्यों का दिल जीत लेता है, वही टीमलीडर सर्वश्रेष्ठ होता है।

जिस तरह पाँचों अंगुलियाँ बराबर व एक समान नहीं होतीं, उसी तरह किसी भी टीम के सदस्य एक जैसे नहीं होते। उनके स्वभाव व नजरिये में बहुत फर्क होता है, लेकिन अलग-अलग स्वभाव व नजरिये वाले लोगों को एक टीम में जोड़ना, उनसे कार्य करवाना, उनमें तालमेल बनाए रखना ही टीमलीडर का दायित्व होता है, लेकिन जब तक टीम के सदस्य अपने टीमलीडर का सहयोग नहीं करते, आपस में मिलजुलकर नहीं रहते, तब तक टीम वर्क अधूरा रहता है।

यदि टीम के सदस्यों में अच्छा तालमेल हो, उनमें आत्मविश्वास हो, उनमें योग्यता व कार्यकुशलता हो, तो ऐसी टीम सामान्य नेतृत्व में भी विशेष कार्य करने में सफल होती है और नई तरह की चुनौतियों को स्वीकारने के लिए भी हर समय तैयार रहती है। ऐसी टीम में यदि कोई सदस्य अवकाश भी लेता है, तो भी टीम उसकी कमी को पूरा कर देती है।

जिस तरह हमारा परिवार रिश्तों से बना हुआ है और हम उसे बहुत महत्त्व देते हैं- उसी तरह से टीम के सदस्यों में भी एक भावनात्मक रिश्ता जुड़ जाता है, जो उन्हें टीम में बाँधे रखता है और टीम में अपना अच्छा प्रदर्शन करने के लिए प्रेरित करता है। देखा जाए तो टीम के सदस्य एक छोटे परिवार की तरह ही होते हैं, जिसमें सब मिलजुलकर कार्य करते हैं और टीमलीडर का यह दायित्व होता है कि वह परिवार के मुखिया की तरह से अपनी टीम के सदस्यों का ध्यान रखे, उनकी भावनाओं का सम्मान करे, उनके सुख-दुःख में शामिल होकर उन्हें भावनात्मक संबल देने का प्रयास करे। जरूरत पड़ने पर वह खुद भी उनके साथ जूझते हुए उनका आत्मविश्वास बढ़ाए। इतना ही नहीं, अनजाने में यदि कभी किसी से कोई भूल-चूक हो जाए, तो उसे माफ करे और उसे तनाव में न आने दे।

यदि टीमलीडर अपने दायित्वों का ठीक से निर्वहन नहीं करता है, अपनी टीम के सदस्यों को बिना बात के ही डाँटता है व उन्हें अपमानित करता है, तो ऐसी टीम के सदस्य न सिर्फ असन्तुष्ट रहते हैं, बल्कि ऐसी टीम का कोई भी कार्य समय पर पूरा नहीं होता है और न ही उनके कार्यों में कौशल आ पाता है।

कोई भी संस्था चाहे वह छोटी हो या बड़ी, वहाँ हर कार्य टीम वर्क से ही पूरा होता है। बिना टीम के कोई भी संस्था नहीं चल सकती और टीमलीडर के बिना कोई टीम सफल भी नहीं हो सकती। टीम वर्क के बिना किया जाने वाला कार्य सफल नहीं होता। बिना टीम वर्क के छोटा से छोटा कार्य भी खराब हो जाता है।

टीम का महत्त्व यदि हम खेलों में देखें तो उसे देख कर बहुत कुछ सीख सकते हैं। बहुत सारे खेल ऐसे हैं, जो टीम के बिना नहीं खेले जा सकते, जैसे- क्रिकेट, फुटबॉल, कबड्डी, हॉकी, बॉलीबॉल आदि। इन खेलों में अच्छा प्रदर्शन करने के लिए एक अच्छी टीम का चयन जरूरी है। हालांकि अच्छी टीम बनाना आसान नहीं होता। एक मजबूत और उत्साही टीम बनाने के लिए टीमलीडर को आगे आना होता है। जरूरी नहीं कि टीम का हर सदस्य एक समान कुशल हो, लेकिन यह जरूरी है कि हर सदस्य के अन्दर कोई न कोई विशेषता हो, जिसे पहचानना और उसके अनुसार उसे आगे बढ़ाना टीमलीडर के ही हाथ में होता है।

हर सदस्य से एक जैसी अपेक्षा भी नहीं रखी जा सकती लेकिन टीम के सदस्यों की खूबी जानकर उनसे उसी तरह का काम

लेना टीमलीडर की योग्यता पर निर्भर करता है। एक समझदार व सुलझा हुआ टीमलीडर, टीम के सदस्यों की गलतियों पर उन्हें डाँटने व अपमानित करने की बजाय उन्हें समझाता है और सही ढंग से कार्य करने हेतु उनका मार्गदर्शन करता है।

जब टीम के सदस्यों को अपनी गलतियों के कारण डाँट मिलने के स्थान पर कार्य करने के लिए पुनः अवसर व प्रोत्साहन मिलता है, तो वे अपनी गलतियों को महसूस करते हुए उनकी पुनरावृत्ति न होने का संकल्प लेते हैं। इसके अलावा टीमलीडर का यह कार्य है कि वह हर दिन, हर पल टीम के सदस्यों का विश्वास बढ़ाता रहे, ताकि उसके टीम के सदस्य अधिक सीखने-जानने व मुश्किल से मुश्किल काम को करने के लिए भी आत्मविश्वास से भरे रहें।

इस तरह टीम के सदस्य व टीमलीडर दोनों की महत्ता है। बड़े स्तर पर किए जाने वाले कार्य टीम के बिना नहीं किए जा सकते और टीमलीडर के बिना टीम के सदस्य अपने कार्यों को अंजाम तक नहीं पहुँचा सकते क्योंकि टीमलीडर ही वह माध्यम होता है, जो सबको लक्ष्य दिखाता है, लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग बताता है, अर्थात् कार्ययोजना बताता है और टीम के सदस्यों के साथ चलते हुए उन्हें लक्ष्य तक ले जाता है। इस तरह टीम के सदस्यों को एकजुट करने व उनसे सही ढंग से कार्य कराने का दायित्व टीमलीडर का होता है।

जिस टीमलीडर से टीम का हर सदस्य जुड़ा होता है और वह उसकी हर बात मानता है, उसे दिल से स्वीकारता है, तो ऐसी टीम के सदस्य चाहे कितने भी विपरीत स्वभाव के हों, वे मिलजुलकर कार्य करने में सफल होते हैं और अपने कार्यों से अपनी मंजिल तक अवश्य पहुँचते हैं।

कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो अकेले किए जा सकते हैं, लेकिन कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जिन्हें अन्य लोगों के सहयोग के बिना पूरा कर पाना संभव नहीं हो पाता। किसी टीम में जुड़कर कार्य करने में भी जब व्यक्ति अपना कार्य करता है, तो वह अकेले ही उसे पूरा करता है, लेकिन कार्य पूर्ण होते ही वह उसे दूसरे को या टीमलीडर को सौंप देता है ताकि उस कार्य का अगला चरण पूरा किया जा सके। हर व्यक्ति सभी कार्यों में कुशल नहीं होता, लेकिन कई व्यक्तियों का सम्मिलित कौशल कार्य को बेहतरीन बना देता है और इस तरह से वह कार्य सफल होता है।

इस तरह जो कार्य कई चरणों में किए जाते हैं, उन्हें यदि टीम वर्क से किया जाए, तो वह कार्य चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, असंभव ही प्रतीत क्यों न होता हो, वह सरलता के साथ पूरा हो जाता है और उस कार्य के पूर्ण होने पर उसे देखकर आश्चर्य होता है कि यह कैसे पूरा हुआ होगा? टीम वर्क का ही प्रभाव है कि आज हमारे देश की सुरक्षा हेतु कई तरह की मिसाइलें बनायी जा चुकी हैं, अंतरिक्ष में कई यान भेजे जा चुके हैं, कई तरह की खोजें की जा चुकी हैं और कई ऐसे निर्माण किए जा चुके हैं, जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है कि ये कार्य करना कैसे संभव हुआ होगा। यह टीमवर्क की ही महत्ता है।

❑

दृष्टिकोण का परिवर्तन ही सबसे बड़ा परिवर्तन है। अपनी सीमा के संकीर्ण दायरे को बढ़ाकर विशाल क्षेत्र तक विकसित करने का नाम ही विकास है। वासना और तृष्णा की क्षुद्रता की उपेक्षा करते हुए कर्त्तव्यपालन और परमार्थ की आकांक्षाएँ जाग्रत करना ही सच्चा जागरण है। कुविचारों और दुर्भावनाओं के काम, क्रोध, लोभ, मोह के बन्धनों को तोड़ डालना- इसी का नाम मुक्ति है। सन्तोष, संयम और सच्चाई, सज्जनता और शान्ति की संतुलित मनोभूमि बनाये रखना ही स्वर्ग है। यह अपनी धरती स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है। यह अपना मानव शरीर देवताओं से उत्तम है। यह मनुष्य जन्म ईश्वर का हमें सबसे बड़ा अनुग्रह और वरदान है। इस अलभ्य अवसर का, इस परम सौभाग्य का समुचित सदुपयोग करते हुए वह करना चाहिए जो करने योग्य है। वह सोचना चाहिए जो सोचने योग्य है। वह चाहना चाहिए जो चाहने योग्य है। उस मार्ग पर चलना चाहिए जो चलने योग्य है।

परम आनंद का स्रोत अध्यात्म

ज्येष्ठ का मास चल रहा था। आकाश से तपता सूरज मानो आग के गोले बरसा रहा था। सूरज की आग बरसाती गर्मी से जनजीवन बड़ा ही बेहाल और अस्तव्यस्त हो चला था। ताल-तलैयों से लेकर सरोवर व सरितायें सूखने लगे थे। नन्हेंसे पौधों से लेकर विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ तपती धूप के कहर से झुलसकर प्रायः मृतप्राय हो चली थीं। पशु-पक्षी अपने मधुर कलरव को छोड़ अपने-अपने घोसलों व आशियानों में भूख-प्यास के मारे चीखने-कराहने लगे थे। किसानों के हरे-भरे खेत वीरान हो चले थे और इस प्रकार लोग दाने-दाने को तरस रहे थे।

देखते-ही-देखते अचानक एक दिन मानसून ने दस्तक दी। आकाश में घनघोर घटायें छाने लगीं और अब से पूर्व जहाँ आग के अंगारे बरस रहे थे, वहीं अब शीतल मन्द बयार बहने लगीं फिर सावन की रिमझिम फुहार ने मानो जन-जन में फिर से नई चेतना का संचार कर दिया। ताल-तलैयों में पानी भर आया। सरितायें फिर से प्रवाहमान हो उठीं। सावन से जीवनरस पाकर पेड़-पौधे, वनस्पतियों से लेकर पशु-पक्षी, मनुष्य सभी फिर से चैतन्य हो उठे। फलदार वृक्ष फिर से भारी फलों से झुक उठे। खेतों की हरियाली देखकर किसान हर्षित हो उठे। सरोवर व सरिताओं का जल-रस पीकर पशु-पक्षी फिर से मधुर कलरव करने लगे, जल-क्रीड़ा करने लगे और इस प्रकार सारा दृश्य यकायक बदल सा गया। अचानक सबके लिए एक नये जीवन, मधुर जीवन ने दस्तक दे दी।

यदि हम अपने जीवन पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि हमारे जीवन में भी काम, क्रोध, मद-मोह, दंभ, दुर्भाव, ईर्ष्या, द्वेष आदि भावनायें अंगारे सदृश बरस रही हैं। हमारी चित्तभूमि भी इन अंगारों से बेबस और बेहाल है। इन बरसते अंगारों ने करुणा, प्रेम व संवेदना से भरे हमारे अंतस के ताल-तलैयों, सरोवर, सरिताओं को सोख लिया है। तभी तो हम इतने स्वार्थी, निष्ठुर और निर्दयी हो गये हैं कि किसी दूसरे की आकुल-पुकार, किसी की पीड़ा, हमें अब पीड़ित नहीं करती। अब हम भी पेट, परिवार व प्रजनन की परिधि में रहकर उतने ही छोटे और संकीर्ण हो गये हैं जितने कि जीव-जंतु और पशु-पक्षी आदि।

ऐसा जीवन भी क्या कोई जीवन है? क्या कभी हम इस पशुवत स्थिति से ऊपर उठ सकेंगे? क्या कभी हम अपने वास्तविक सत-चित्-आनंद स्वरूप को प्राप्त कर सकेंगे? क्या हममें भी सत्य, प्रेम, करुणा, सेवा, संवेदना आदि दिव्य भावनाओं का संचार हो सकेगा? क्या कभी हम स्वार्थ, अनीति के मार्ग को छोड़ सच्चाई और परमार्थ के मार्ग पर चल सकेंगे? क्या कभी हम भौतिकता की अंधी दौड़ से बाहर निकलकर ईश्वर के मार्ग पर चल सकेंगे? यदि हाँ तो कैसे?

ये पूर्णतया सत्य है कि हमारे जीवन में भी एक नया सबेरा हो सकता है। हम भी पशुवत जीवन से ऊपर उठ सकते हैं। हम भी मानव से माधव बनने की ओर अग्रसर हो सकते हैं। हम भी नर से नारायण बन सकते हैं। हमारे अंतस से भी काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि दूषित भावनायें समाप्त हो सकती हैं। हमारे अंतस में भी करुणा, प्रेम व संवेदना की ऊँची-ऊँची लहरें उठ सकती हैं। हमारी बंजर चित्तभूमि पर भी हरियाली छा सकती है। हमारी चित्तभूमि पर भी समाधि के फूल खिल सकते हैं और हमारा भौतिक और आत्मिक जीवन भी महक सकता है, खुशियों से भर सकता है, आनंद से ओत-प्रोत हो सकता है। पर कैसे?

वह ऐसे कि यदि हम भी अपने जीवन में अध्यात्म के मानसून को आने दें। यदि हमारे जीवन में भी योग व अध्यात्म मानसून सरीखे उतर आयें। वातावरण में कितनी भी तपन क्यों न हों, पर सावन की रिमझिम फुहार पाकर वह तपन भी तिरोहित हो ही जाती है। भूमि कितनी भी बंजर क्यों न हो पर बार-बार की जुताई, सिंचाई, खाद-पानी पाकर वह भी उर्वर हो उठती है और देखते-ही-देखते उसकी कोख से हरियाली प्रकट हो उठती है। उसकी कोख से निकलकर बड़े-बड़े वृक्ष गगन चूमने लगते हैं। रंग-बिरंगे पुष्प खिल उठते

हैं और सारा वातावरण ही महक उठता है। योग व अध्यात्म भी मानूसन की तरह ही हैं।

जब ये किसी के जीवन में प्रवेश करते हैं, तब उस व्यक्ति का जीवन बिल्कुल ही बदल जाता है। अध्यात्म के बल पर अब तक न जाने कितने साधकों का जीवन बदला है। अब तक न जाने कितने रत्नाकर- वाल्मीकि बनने में सफल हुये हैं। न जाने कितने अंगुलिमाल सरीखे प्रवृत्ति व प्रकृति वाले लोग भिक्षु बने हैं। जीवन में योग व अध्यात्म के प्रवेश व प्रयोग से अब तक न जाने कितने लोग बुद्धपुरुषों जैसा जीवन जीने में सफल हुये हैं।

परमपूज्य गुरुदेव युगऋषि पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य जी का तो यह स्पष्ट मत रहा है कि 'अध्यात्म एक नगद धर्म है। इसे अपनाकर कोई भी लाभान्वित हो सकता है। इसमें लाभ ही लाभ है और हानि की तो दूर-दूर तक कोई संभावना ही नहीं है।' वे अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं-'अध्यात्म एक प्रयोग है। मैंने अपने जीवन की, प्रयोगशाला में इस प्रयोग को किया है और अध्यात्म को प्रयोग की कसौटी पर शत-प्रतिशत खरा पाया है। विविध शास्त्रों में अध्यात्म के लाभ, महत्त्व और महिमा के बारे में जो भी बातें कही गई हैं वे अक्षरशः सत्य हैं क्योंकि मैंने इसकी प्रत्यक्ष अनुभूति अपने जीवन में की है और इसे कोई भी आजमा कर देख सकता है।'

जिस तरह से देश या प्रदेश के विभिन्न भागों में विभिन्न सागरीय तटों से मानसून का प्रवेश विविध रूपों में होने से अंततः बारिश होती ही होती है, वैसे ही व्यक्ति के जीवन में ज्ञान, कर्म, भक्ति आदि किसी भी रूप में अध्यात्म का प्रवेश क्यों न हो अंततः उसका निष्कर्ष, प्रतिफल एक ही होता है और वह यह कि व्यक्ति के अंतरंग में अध्यात्म के उतरते ही उसके अंदर एक नई सृष्टि का, नई दृष्टि का सृजन होने लगता है और उसके अंतस में ज्ञान का, कर्म का, भक्ति का सूरज उगने लगता है। उसके अंतस का अंधेरा अंततः मिटने लगता है।

ऐसे में उसका अंतरंग ईश्वरीय आलोक से आलोकित हो उठता है, उसके अंतरंग में अलौकिक आनंद उतर आता है जिसकी अनुभूति वह प्रतिपल करने लगता है। उसके उस परम आनंद की तुलना किसी भी भौतिक सुख-वैभव से नहीं की जा सकती क्योंकि वह ईश्वरीय आनंद लौकिक नहीं अलौकिक है। उसका वह परम सुख नश्वर नहीं शाश्वत है। इसीलिए इस परम सुख को पाने के लिये ऋषियों ने, योगियों ने, साधकों ने भौतिक सुख-सुविधाओं का परित्याग किया।

यही मार्ग हमारे लिये भी प्रस्तुत है। हमारे लिये भी सुलभ है। यह मार्ग निस्संदेह हमारे लिये भी खुला है। हम मात्र भौतिक जीवन जीकर इस दुर्लभ मानव जीवन की हानि करना चाहते हैं या इस दुर्लभ मानव तन को परम आनंद की प्राप्ति का, परमपिता परमेश्वर को पाने का, जीवन के परमलक्ष्य को पाने का और जीवन-मरण के चक्र से हमेशा-हमेशा के लिये मुक्त हो जाने का माध्यम बनाना चाहते हैं, साधन बनाना चाहते हैं। यह हमारे हाथ में है। हम जो भी चाहें, वो कर सकते हैं पर शास्त्रीय और ईश्वरीय आदेश तो यही कहते हैं कि हम मात्र भौतिक भोग-विलास में इस दुर्लभ मानव जीवन को नष्ट न करें। अपने जीवन में धर्म-अध्यात्म के प्रयोग से हम सभी प्रकार के भवबंधनों से मुक्त हो जायें और सदा के लिये आनंदित हो जायें।

प्रयोग के तौर पर हम अपने जीवन में अष्टांग योग का अभ्यास कर सकते हैं। यह अध्यात्म के नवप्रवेशी साधकों के लिये बड़ा ही उपयोगी व सरल है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अंग हैं। इसे अष्टांग योग या राजयोग भी कहा जाता है। यम के अंतर्गत साधक को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का अभ्यास करना होता है। मन, वाणी और शरीर से किसी प्राणी को कोई दुःख न देना ही अहिंसा है। अहिंसा के अभ्यास से व्यक्ति में दूसरों के प्रति हिंसा, बैर भाव आदि समाप्त हो जाते हैं। जो व्यक्ति परमपिता परमेश्वर का प्यार पाना चाहता है भला वह स्वयं हिंसक कैसे हो सकता है? वह भी तो सबके प्रति प्रेम से भरा होना चाहिये।

सत्य का अर्थ है मिथ्यावचन का परित्याग। व्यक्ति को वैसे वचनों का प्रयोग करना चाहिए जिनसे सभी प्राणियों का हित हो। अस्तेय तीसरा यम है। दूसरे के धन का अपहरण करने की प्रवृत्ति का त्याग ही अस्तेय है। ब्रह्मचर्य चौथा यम है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है विषय-वासना की ओर झुकाने वाली प्रवृत्ति का परित्याग। अपरिग्रह

पाँचवाँ यम है। लोभवश वस्तुओं का संग्रह करते रहने की प्रवृत्ति का त्याग ही अपरिग्रह है। नियम- योग का दूसरा अंग है। नियम भी पाँच हैं। शौच प्रथम नियम है। शौच के अंदर बाह्य और आंतरिक शुद्धि समाविष्ट है। नित्य स्नान, पवित्र सात्विक भोजन, स्वच्छता के द्वारा बाह्य शुद्धि तथा मैत्री, करुणा, सहानुभूति, प्रसन्नता, कृतज्ञता के द्वारा आंतरिक अर्थात् मानसिक शुद्धि को अपनाना चाहिए। संतोष दूसरा नियम है। उचित प्रयास से जो कुछ भी प्राप्त हो उसी से संतुष्ट रहना ही संतोष कहलाता है। तप तीसरा नियम है। सर्दी-गर्मी सहने की शक्ति, लगातार बैठे रहना, खड़ा रहना, शारीरिक कठिनाइयों को झेलना आदि को ही तप कहा गया है। स्वाध्याय चौथा नियम है। स्वाध्याय का अर्थ है, स्वयं का अध्ययन करना, आत्म-निरीक्षण, आत्म-मूल्यांकन, शास्त्रों का अध्ययन, बुद्धपुरुषों के कथनों का अनुशीलन आदि करना। ईश्वरप्रणिधान पाँचवाँ नियम है। ईश्वर के प्रति श्रद्धा-विश्वास रखना ही ईश्वरप्रणिधान है।

यम-नियम का पालन करता हुआ साधक अब अष्टांग योग के तीसरे अंग का अभ्यास करता है जिसे आसन कहते हैं। आसन का अर्थ है शरीर को विशेष रूप से स्थिर रखना। पद्मासन, सुखासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन आदि किसी आसन में सुखपूर्वक एवं स्थिरतापूर्वक बैठने से मन की चंचलता मिटने लगती है। चतुर्थ अंग को प्राणायाम कहते हैं। श्वास-प्रश्वास की क्रिया के द्वारा जीवनीशक्ति में वृद्धि होती है, मन की चंचलता एवं अज्ञानता भी मिटने लगती है। प्रत्याहार पाँचवाँ अंग है। इसके द्वारा इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाना तथा उसे मन के वश में रखना होता है।

धारणा योग का छठा अंग है। धारणा का अर्थ है चित्त को अभीष्ट विषय पर जमाना, लगाना या एकाग्र करना। धारणा से चित्त किसी एक विषयवस्तु पर केन्द्रित हो जाता है। वह वस्तु बाह्य या आंतरिक दोनों ही हो सकती है। इस अवस्था की प्राप्ति के बाद साधक ध्यान करने के योग्य हो जाता है।

ध्यान सातवाँ योगांग है। चित्त की एकाग्रता जब गहरी होती जाती है तब इसे ध्यान कहते हैं। समाधि आठवाँ योगांग है। इस अवस्था में ध्येय वस्तु भी पूर्णतः लीन हो जाती है जिसके फलस्वरूप उसे अपना कुछ भी ज्ञान नहीं रहता।

ध्यान की अवस्था में वस्तु की ध्यान क्रिया और आत्मा की चेतना रहती है परंतु समाधि में यह चेतना ध्येयस्वरूप मात्र रहती है। इस अवस्था में चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है। इस प्रकार अंततः साधक का अंतरंग आत्मज्ञान व ब्रह्मज्ञान की ज्योति में जगमगा उठता है, ज्योतिर्मय हो उठता है।

समाधि की पराकाष्ठा में उसे अपने वास्तविक स्वरूप का बोध हो जाता है। चित्त के निर्मल होते ही, पावन होते ही उस पर ईश्वरीय अनुदान, अनुग्रह बरसने लगते हैं। उसके अंदर करुणा, संवेदना, प्रेम के अजस्र स्रोत फूट पड़ते हैं। उसके अंतस के आकाश में एक ओर ज्ञान का सूर्य उग आता है तो दूसरी ओर उसका आत्मविस्तार होते ही उसके हृदयसिन्धु में प्रेम की अनगिनत लहरें उठने लगती हैं और वह उन लहरों में खेलता हुआ, किलकारियाँ भरता हुआ सदा आनंदित होता रहता है। इस प्रयोग को हमें स्वयं के जीवन में भी करके तो देखना ही चाहिए। ❑

युगसंधि के बारे में कई तरह के विचार हैं जिसमें एक यह है कि एक पक्ष नष्ट होने वाला है और एक पक्ष जीवित होने वाला है। ऐसे समय को प्रसव पीड़ा कहते हैं, जिसमें एक ओर प्रसूता के ऊपर जान की बन रही है, वह जीवन और मौत के झूले में झूल रही है। दूसरी ओर है खुशी, उमंग, मुस्कान कि नया बच्चा गोदी में आने वाला है। एक ओर खुशी भी होती है, संतोष होता है कि नया बच्चा आने वाला है और दूसरी ओर प्रसव पीड़ा में माँ की जान भी निकलती है। यह प्रसव पीड़ा का समय है, युग की पीड़ा का, युग परिवर्तन का समय है जिसमें हम और आप रह रहे हैं। इसमें दैत्य मरने जा रहा है और देव अपना जन्म लेने जा रहा है, उदय होने जा रहा है।

-परमपूज्य गुरुदेव

तनावमुक्त परीक्षा की तैयारी

परीक्षा के समय तनाव का होना एक ऐसा सच है, जिससे अधिकांश परीक्षार्थी दो-चार होते हैं। कई बार तो यह तनाव इस कदर हावी हो जाता है कि व्यक्ति गहरे अवसाद में चला जाता है। कई लोग तो परीक्षाओं के आते-आते हाथ खड़ा कर देते हैं व इसके दबाव में परीक्षा ही छोड़ देते हैं। कुछ इस तनाव के कारण परीक्षा में अपना श्रेष्ठतम प्रदर्शन भी नहीं कर पाते। परीक्षा का सामना पूरी तैयारी के साथ कैसे करें, जिससे कि श्रेष्ठतम प्रदर्शन संभव हो- प्रस्तुत हैं ऐसे कुछ सूत्र।

नियमित पढ़ाई की ठोस कार्ययोजना बनाएँ, क्योंकि परीक्षा के लिए पूर्व से सुनियोजित तैयारी ही सर्वश्रेष्ठ रणनीति रहती है। नियमित रूप में पढ़ाई का व्यवहारिक लक्ष्य निर्धारित हो, जिसमें कि उपलब्ध समय, इसके अंतर्गत पूरे किए जाने वाले अध्ययन कार्य का स्पष्ट लेखा-जोखा हो। फिर बड़े लक्ष्य को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटकर पूरा करने की अनुशासित कार्य योजना पर अमल भी किया जाए। ऐसे में नियमित आधार पर अपनी प्रगति का आंकलन हमें, हमारी तैयारी के प्रति आश्वस्त रखता है और सहर्ष परीक्षा का सामना करने की स्थिति बनती है।

नोट्स समय पर बनाते रहें, क्योंकि परीक्षा के पूर्व नोट्स का न होना तनाव का एक बड़ा कारण बनता है। अचानक एक साथ कई विषयों की तैयारी सामने आने पर हाथ-पैर फूल जाते हैं। इसलिए पढ़ाई के साथ नियमित रूप में नोट्स भी बनते रहें, जिससे कि परीक्षा आने पर पढ़ाई एवं पुनरावृत्ति(रिवीजन) का काम सरल हो सके। इसके लिए कक्षा के साथ पुस्तकालय में कुछ समय बिताने का क्रम अभीष्ट रहता है।

नोट्स के साथ नियमित पुनरावृत्ति (रिवीजन) महत्त्वपूर्ण है, जिससे विषय याद रहता है अन्यथा विषय विस्मृति के गर्त में चला जाता है। शोध के आधार पर पाया गया है कि हम 24 घंटे में 67 फीसदी विषय भूल जाते हैं। अतः नियमित पुनरावृत्ति करने पर विषय कंठस्थ रहता है और परीक्षा के समय कार्य सरल हो जाता है।

यदि हम एक ही विषय पढ़ते-पढ़ते थक जाते हैं तो विषयों की अदला-बदली की जा सकती है, क्योंकि विषयों को बदलने से रुचि बनी रहती है और कम समय में अधिक पढ़ाई संभव होती है। शुरुआत हम सरल विषयों से कर सकते हैं व धीरे-धीरे कठिन विषयों को हाथ में ले सकते हैं। यदि मनःस्थिति अनुकूल हो तो कठिन विषयों से भी शुरुआत कर सकते हैं। हमारी मनःस्थिति अधिकांश समय पढ़ाई के अनुकूल बनी रहे, यह भी जरूरी होता है।

पढ़ाई के लिए अनुकूल परिवेश बहुत उपयोगी रहता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि पढ़ाई के लिए घर का शांत व एकांत कोना या कमरा उपयुक्त रहते हैं। पढ़ाई की मेज सुव्यवस्थित हो, जिससे कि आवश्यक पुस्तकें, कॉपी या पढ़ने-लिखने की सामग्री आवश्यकता पड़ने पर आसानी से उपलब्ध हो सके- ये जरूरी है। टेबल का अस्त-व्यस्त होना, समय पर आवश्यक सामग्री का उपलब्ध न हो पाना तनाव का कारण बनता है।

उचित आहार, विश्राम एवं निद्रा का अपना महत्व है। पढ़ाई के लिए उचित आहार लेना आवश्यक है। पेट जितना हल्का रहे, ठीक रहता है। जंक फूड लेने से बचें, जो पेट और सर दोनों को भारी कर देता है। कठिन श्रम के साथ विश्राम एवं निद्रा का भी उचित अनुपात रखें, जो मन की ग्रहणशीलता को उच्च स्तर पर बनाए रखने में सहायक होगा। बीच-बीच में टहलने का तरीका भी अपना सकते हैं, जिससे कि तन व मन एक नई ऊर्जा के साथ कार्य करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

परीक्षा के दौरान बाहरी व्यवधानों से यथासम्भव दूर रहें। स्मार्ट फोन इसमें एक प्रमुख बाधा बनता है। अतः परीक्षा की तैयारी के दौरान सोशल मीडिया से यथासम्भव दूर ही रहें। साथ ही यार-दोस्तों की समय बर्बाद करने वाली संगत से बचें, अनावश्यक

गप्पबाजी से भी दूर रहें। गलत संगत से अकेला भला, की उक्ति यहाँ उचित रहती है। इस दौरान अत्यधिक बहिर्मुखी कार्यों से भी बचें।

प्रकृति का सान्निध्य परीक्षा के तनाव को दूर करने में बहुत सहायक सिद्ध होता है। घर के आंगन, छत या बालकनी के गमलों में हरियाली को पास रखना एक प्रशांतक प्रयोग सिद्ध होता है। शहरों में पार्क तथा गाँव में खेत-खलिहान, बाग या नदी-झील के किनारे, पढ़ाई को अच्छे से करने के लिए अनुकूल स्थान सिद्ध होते हैं, जहाँ मन प्रकृति के बीच सहज रूप से शांत एवं एकाग्र हो जाता है।

यदि इतनी तैयारी के साथ आप परीक्षा का सामना करते हैं, तो कोई कारण नहीं कि परीक्षा के पूर्व आप तनावग्रस्त होंगे, बल्कि परीक्षा आपके लिए एक रोचक अनुभव सिद्ध होगी। तैयारी के दौरान भी परीक्षा को हौवा न बनने दें बल्कि बीच-बीच में अपने मनपसंदीदा कार्य, जैसे - खेल-कूद, मनोरंजन, भ्रमण आदि को भी स्थान दें। ऐसे छोटे-छोटे प्रयोग मन को प्रशांत एवं ओजस्वी बनाने वाले साबित होंगे।

यहाँ अभिभावकों का भी यह कर्तव्य बनता है कि वे अपने बच्चों पर सर्वाधिक नम्बरों या परिणाम के लिए अनावश्यक दवाव न डालें। अपनी अधूरी महत्त्वाकांक्षाओं का बोझ बच्चों के कोमल कंधों पर न थोपें, बल्कि एक सच्चे शुभचिंतक की भाँति उनके श्रेष्ठतम प्रदर्शन में सहायक बनें।

❑

एक बार हनुमान जी की भेंट अर्जुन से हुई। हनुमान राम के भक्त थे, अर्जुन श्रीकृष्ण के। दोनों में बहस छिड़ गयी। हनुमान जी कहने लगे- राम बलवान् हैं और अर्जुन कहने लगे कि कृष्ण बलवान् हैं।

बहस का अंत न होते देख परीक्षा करने का निश्चय हुआ और शर्त तय हुई कि जो हारे वो आत्महत्या कर ले। अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान किया और तुरंत समुद्र में एक विशाल पुल बाँध दिया। ऐसा करने के बाद वे हनुमान जी से बोले- अब यदि आपके भगवान् राम बलवान् हैं तो आप इस पुल को तोड़ कर दिखाइए। यदि आप न तोड़ सके तो भगवान् राम का पराक्रम घटिया माना जाएगा।

यह सुनकर हनुमान जी जोश में भर गए। उन्होंने अपने शरीर का शतयोजन विस्तार करना शुरू किया और पुल के ऊपर पूरी शक्ति के साथ कूद पड़े। भक्तों के इस झगड़े का पता भगवान् विष्णु को चला तो वे बड़े चिंतित हुए। उन्होंने विचार किया कि यदि हनुमान की रक्षा करते हैं तो अर्जुन का अंत होगा और यदि अर्जुन जीतते हैं तो हनुमान की मृत्यु सुनिश्चित है।

सोच-विचार कर उन्होंने स्वयं ही अपना शरीर पुल के नीचे लगा दिया। हनुमान जी ने जैसे ही अपना कदम बढ़ाया तो उनके भार से भगवान् का शरीर फट गया और उसमें से खून बहने लगा। हनुमान जी ने भगवान राम को पहचाना और वे तुरंत उनके पास पहुँचकर दुःख व्यक्त करने लगे। अर्जुन ने भी उनमें कृष्णरूपी भगवान को पहचाना और वे विलाप करने लगे। तब भगवान् बोले- मैं दो नहीं हूँ, मैं तो एक ही हूँ। मेरे ही रूप सारे संसार में फैले पड़े हैं।

अवतार प्रक्रिया का रहस्य

विगत अंक में आपने पढ़ा कि संवत् 2035 के आश्विन शुक्लपक्ष की तिथियों में दिल्ली स्थित लक्ष्मीनारायण मंदिर में वेदांत पर प्रवचन कर रहे स्वामी अखंडानंद सरस्वती द्वारा अवतार तत्व पर दिया गया उपदेश शिष्य ऋषि प्रसाद को भलीभाँति समझ में न आया। सेवा के एक अन्य अवसर पर स्वामीजी ने शिष्य के मन के उहापोह को पहचाना व उसकी जिज्ञासा को ताड़ समुचित समाधान के लिए हरिद्वार जाकर पूज्य गुरुदेव के संसर्ग में रहकर उन्हीं से संबंधित ज्ञान अर्जित करने का निर्देश दिया। स्वामी जी के कार्यक्रम के उपरांत उपयुक्त अवसर पाकर व उनसे आज्ञा लेकर शिष्य ऋषि प्रसाद एक अन्य परिचित सहयोगी राधिका रमण के साथ गंतव्य की ओर रवाना हुआ। यात्रा के उत्तरार्द्ध में गंगा के पवित्र क्षेत्र के संपर्क में आते ही दोनों को अलौकिक अनुभूतियाँ हुईं; जिन्हें व्यक्त कर पाना उनके लिए संभव न बन पड़ा। हरिद्वार पहुँच जाने के उपरांत शांतिकुंज आश्रम में ठहरे ऋषि एवं राधिका को अन्तर्यामी पूज्यवर ने स्वयं ही मिलने बुला लिया। कुशलक्षेम की औपचारिकता संपन्न हो जाने के उपरांत कुछ सूत्रों के आधार पर पूज्यवर ने ऋषि की जिज्ञासा का समाधान किया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.........

इस तरह गुरुदेव ने सूत्र रूप में कुछ बातें कहीं और बोले, 'महाराजश्री ने आपको यहाँ भेजा। आप यहाँ रहिए और जैसा वातावरण यहाँ उपलब्ध है, उसमें अपने अभीष्ट की खोज कीजिए।' पाँच सात मिनट की इस भेंट के बाद राधिका जी और ऋषि नीचे आ गये। राधिका जी ऋषि के ठहरने की व्यवस्था को एक बार और देखकर तथा आश्रम के वरिष्ठ कार्यकर्ताओं से मिलकर चले आये। ऋषि अकेले रह गए। कुछ देर बैठे रहकर वे बाहर निकले और शिविर में आये साधकों से परिचय बढ़ाने, बातचीत करने की कोशिश करने लगे। कुछ एक साधकों से बातचीत हुई तो पता चला कि उनमें से कई स्वामी अखण्डानन्द के बारे में जानते ही नहीं थे।

स्वामी अखण्डानन्द ही क्या दूसरे साधु संतों के बारे में भी उन्हें ज्यादा नहीं पता था। उनकी बातचीत से लगता था कि गायत्री परिवार के माध्यम से वे पहली बार धर्म, अध्यात्म के परिचय में आये हैं। अपनी समझ और शिक्षा के अनुसार वे किंचित पूजा पाठ तो करते रहे थे लेकिन संस्कारवश आसपास के परिवेश और कुल परंपरा ने जितना सिखा दिया था, वहीं तक सीमित थे। उन लोगों से गुरुदेव के बारे में सुना तो लगा कि वे अपने मार्गदर्शक को भगवान के रूप में समझते हैं। वह दिन दो-चार साधकों से बातचीत करते और आश्रम में घूमते रहने में ही बीत गया।

संध्या के समय ऋषि गंगा तट की ओर गये। शान्तिकुञ्ज के दूसरे कार्यकर्त्ता और साधक भी उस समय भगवती गंगा के सान्निध्य में कुछ समय व्यतीत करने जाते थे। ऋषि की इस चहलकदमी का उद्देश्य गंगा किनारे घूमना तो था, सप्त सरोवर में स्थित फोगला आश्रम और परमार्थ निकेतन देखना भी था। कुछ वर्ष पहले इन आश्रमों में उनके गुरुदेव स्वामी अखण्डानंद जी का आना हुआ था उनके सत्संग कार्यक्रम भी हुए थे। ऋषि का मन था कि अब वहाँ की स्थिति को सामान्य साधक की तरह देखा जाए। उन आश्रमों का भ्रमण कर पाए या नहीं, यह अलग बात है। ऋषि को इस तरह गंगा किनारे घूमते हुए साठ पैंसठ वर्ष के एक व्यक्ति से परिचय हुआ। बिना लांग की धोती बाँधे और अधोवस्त्र के रूप में सिर्फ एक बनियान या कुर्ता पहने इन सज्जन से बातचीत हुई तो पता चला कि वे सत्यभक्त जी हैं। सत्यभक्त जी के बारे में ऋषि को इतना ही पता था कि उन्होंने भारत में सबसे पहले कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की थी। बाद में पत्रकारिता से जुड़े और एकता समता के आदर्शों का प्रचार करते हुए गायत्री परिवार से आ जुड़े। (सत्यभक्त जी का उल्लेख चेतना की शिखर यात्रा के द्वितीय खण्ड में भी आ चुका है।)

ऋषि ने सत्यभक्त जी को अपना परिचय दिया । शान्तिकुञ्ज आने का उद्देश्य और अपने गुरु के बारे में बताया।

सत्यभक्त जी ने स्वामी जी के बारे में अतिरिक्त जानकारी भी दी जो ऋषि को शायद पता नहीं थी। उन्होंने कहा कि महाराजश्री सनातन धर्म के पारंपरिक और प्राचीन आश्रम व्यवस्था के साक्षात विग्रह हैं। वे चाहते तो स्वयं भी आपको अवतार तत्त्व का रहस्य समझा सकते थे। मुझे लगता है, यहाँ भेजने का उनका एक विशेष उद्देश्य रहा होगा।

सत्यभक्त जी ने अखंडानंद जी महाराज से सबंधित जो कुछ बातें बताई, उन्हें सुनकर ऋषि के मन में श्रद्धा का वेग और बढ़ उठता था। उनमें एक प्रसंग का उल्लेख उपयुक्त रहेगा। स्वामी जी के एक गृहस्थ शिष्य थे, संभवतः जबलपुर के पास किसी गाँव से आए थे। भगवान राम के प्रति उनके मन में अगाध भक्तिभाव था। मन ही मन उन्होंने स्वामी अखण्डानन्द जी को अपना गुरु मान लिया था। स्वामीजी मूलतः भागवत और वेदान्त शास्त्र पर व्याख्यान देते थे। उन किशोर का आग्रह रामकथा के प्रति था। स्वामी अखण्डानंद यों रामकथा भी कहते थे। मुंबई में मानस पर दिए गए उनके कई प्रवचन प्रसिद्ध हैं। जबलपुर से आए वे ब्रह्मचारी किशोर उन कथाओं को सुनते सुनते संन्यास का आग्रह करने लगे। स्वामी जी अक्सर कहा करते कि सनातन धर्म की परम्परा के अनुसार गृहस्थ धर्म का पालन कर लेने के बाद ही संन्यासी बनना चाहिए। उन ब्रह्मचारी शिष्य का आग्रह फिर भी बना रहा। जब भी कथा होती तो वे अविचल स्थिति में मुग्ध भाव से सुनते रहते।

एक दिन वृंदावन में रामकथा का आयोजन शुरु ही हुआ था कि विचित्र घटना घटी। वृंदावन में यों वानरों की कमी नहीं है। उनके उत्पात से क्या स्थानीय और क्या यात्री सभी त्रस्त रहते हैं और उनकी शरारतें देखकर खुश भी होते हैं। लेकिन यह प्रसंग अलग तरह का है। कथा चल रही थी, एक वानर शांत और गंभीर भाव से आया। मानो इसका उद्देश्य कथा सुनना ही हो। उसके हाथ में एक नारियल था। मंथर गति से चलता हुआ वह वानर व्यासपीठ के पास पहुँचा और कुछ क्षण बाद मंच पर भी चढ़ गया। लोगों ने उसे हटाने की कोशिश की। स्वामी जी ने हाथ के इशारे से वानर को बैठे रहने देने के लिए कहा। वानर ने अब भी नारियल दोनों हाथों में थाम रखा था। कभी महाराजश्री की ओर तो कभी श्रोताओं की ओर देखता था। उसकी दृष्टि संन्यास का आग्रह कर रहे जबलपुर के उस निष्ठावान विद्यार्थी साधक पर टिकी। फिर वानर को पता नहीं क्या सूझा कि उसने साधक को मंच पर आने का संकेत किया और खुद स्वामी जी के पास जाकर उनके सामने नारियल रख दिया।

हनुमान का आदेश

वानर का संकेत देखकर वह विद्यार्थी साधक मंच की ओर बढ़ा। उधर मंच पर नारियल प्रस्तुत करने के बाद वानर तो चला गया। स्वामी जी ने उस श्रीफल को उठाया और साधक के हाथ में थमाते हुए कहा, 'तो रामकिंकर। अब हनुमान जी महाराज का आदेश हो गया है कि तुम भी रामकथा कहो। श्रद्धालुजनों को उनके अवतार तत्त्व का रहस्य समझाओ और उनकी भक्ति का प्रचार करो।'

स्वामी अखण्डानंद के मुँह से अनायास ही रामकिंकर का संबोधन निकल गया था। उन साधक ने इस नाम को गुरु का प्रसाद माना और उनके हाथों से नारियल ग्रहण कर लिया। सत्यभक्त जी से इस घटना का उल्लेख सुनकर ऋषि के मन में अपने गुरु के प्रति श्रद्धा और भी दृढ़ हो गई। लेकिन यह प्रश्न भी जोर से घुमड़ने लगा कि अवतार तत्त्व का रहस्य तो वे स्वयं ही समझा सकते थे। इसके लिए यहां शान्तिकुञ्ज आश्रम में क्यों भेजा? उन्होंने सत्यभक्त जी से ही यह प्रश्न पूछ लिया। सत्यभक्त जी ने कहा कि विश्वास और विचार की दृष्टि से मैं कम्युनिस्ट हूँ। इसलिए मैं आस्थापरक व्याख्या नहीं कर सकूँगा। लेकिन इतना निश्चित है कि संसार में ऐसी घटनाएं होती हैं जिनका रहस्य समझना मुश्किल है। अर्थ वास्तव में समझा ही नहीं जा सकता। लेकिन वे होती हैं। उन घटनाओं को सामान्य रूप में देखें तो वे इतिहास की आवश्यकता और एक प्रक्रिया दिखाई देती हैं। लेकिन वस्तुतः इतनी ही नहीं होतीं।

सत्यभक्त जी ने गंगा किनारे बैठे हुए ही इस तत्त्व की मीमांसा की। उसका सार यह था कि मनुष्य अपने सामान्य प्रयत्नों और साधना उपासना से अपना, अपने आसपास का उत्कर्ष करता है तो वह स्थिति आरोहण कही जाती है। आरोहण अर्थात मानवीय चेतना का भगवान की ओर उठना। इस दर्शन का एक विशिष्ट पक्ष भी है। उसके अनुसार स्थितियाँ विकट और विषम हो जाती हैं। इतनी विषम कि सामान्य प्रयत्नों के वश की बात नहीं रह जाती तो

भागवत चेतना स्वयं मानवीय कलेवर में आती है, उतरती है। उस स्थिति को अवतरण कहते हैं। अवतरण का यह स्वरूप जिस रूप में दिखाई देता है, इसी का नाम अवतार है।

सत्यभक्त जी ऋषि को जब यह मर्म समझा रहे थे तो आसपास और भी साधक आ गए थे। सुनकर वे भी बैठ गए। करीब आठ दस लोगों के इस समूह में कुछ सदस्यों के मन में और भी जिज्ञासाएँ उठने लगी थीं। सत्यभक्त जी ने उन पर फिर कभी चर्चा करने की बात कही और सब लोग टहलते हुए वापस शान्तिकुञ्ज आ गए यहाँ पहुँच कर अपने अपने कक्ष में चले गए। उस दिन के शेष बचे साधना उपचार संपन्न करने लगे।

स्वामी अखंडानंद जी ने अपने शिष्य को यहाँ क्यों भेजा था? इसका रहस्य न तो ऋषि को समझ आ रहा था और न ही राधिकाजी को। ऋषि ने इसका मर्म जानने में सिर नहीं खपाया। गुरु की आज्ञा कल्याणकर ही होती है, उसका पालन करना चाहिए, विचार नहीं। इस आस्था ने प्रश्न में ज्यादा नहीं उलझने दिया लेकिन गंगा तट पर रामकिंकर जी वाले प्रसंग ने मन के किसी तार को जरूर छू लिया। ऋषि को न जाने क्यों सप्ताह भर बाद होने वाली संन्यास दीक्षा के बारे में संदेह होने लगा। संदेह यह कि महाराजश्री कहीं उस दीक्षा को स्थगित तो नहीं कर देंगे। कहीं उसे गृहस्थ आश्रम में प्रवेश की आज्ञा तो नहीं देंगे और कहेंगे कि पचास या पचहत्तर वर्ष की अवस्था होने के बाद संन्यास में आने की व्यवस्था दें।

इस संदेह के साथ आश्वासन की स्थिति भी उभर रही थी। महाराज श्री ने जिस आश्रम में-शान्तिकुञ्ज में भेजा था वहाँ परंपराओं की नई व्याख्याएँ और नए उन्मेष के दर्शन हो रहे थे। कम उम्र के लोगों, युवकों और विवाहित व्यक्तियों के लिए कनिष्ठ वानप्रस्थ-सावधिक संन्यास का प्रयोग कुछ वर्ष पूर्व ही शुरु हुआ था। यह प्रयोग काफी सफल रहा था। ऋषि को लगा कि महाराज श्री ने संपूर्ण संन्यास की अनुमति नहीं दी तो हो सकता है, वानप्रस्थ के लिए ही कहें। यहाँ भेजने का कोई प्रयोजन तो होगा ही। वह प्रयोजन सिर्फ अवतार रहस्य को समझना-समझाना तो नहीं हो सकता।

सोचते-सोचते ऋषि को कब नींद आ गई, कुछ पता ही नहीं चला। सुबह नींद खुली तो नित्य कर्मों से निवृत्त होने के बाद माताजी और गुरुदेव के पास प्रणाम के लिए गया। उनका आशीर्वादात्मक स्पर्श और प्रसाद मिला। एक मंदस्मिति भी और इसके बाद वापस अपने कक्ष में। उन दिनों साधक प्रायः अपने कक्ष में ही रहते और जप-तप करते थे। नौ दिन के अनुष्ठान में साढ़े तीन चार घंटे जप में बीत जाते। नित्य अग्निहोत्र में भी कुछ समय लगता। इसके बाद स्वाध्याय और सत्संग में समय लग जाता। दिनचर्या का क्रम इस तरह निर्धारित था कि किसी को एक दूसरे से वार्तालाप का समय ही नहीं मिलता। दोपहर तक ऋषि ने भी अपना समय स्वाध्याय में बिताया। कुछ समय सत्यभक्त जी के साथ भी रहा फिर सोचने लगा कि साधना अनुष्ठान का कोई व्रत अपने लिए तो है नहीं। क्यों नहीं कुछ समय आसपास के क्षेत्रों को देखने अध्ययन करने में बिता लिया जाए। अपने इस विचार के बारे में कार्यालय में बताया। प्रबन्धकों को मालूम था कि ऋषि न तो गायत्री परिवार के शिष्य हैं और न ही अतिथि। उन्हें स्वामी अखंडानंद जी ने यहाँ भेजा है। इस जानकारी के अनुरूप वे ऋषि की आवश्यकताओं का ध्यान रख रहे थे। ऋषि ने बाहर जाने की इच्छा व्यक्त की तो तदनुरूप व्यवस्था भी कर दी।

❑

काकचेष्टा बकोध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।
ब्रह्मचारी स्वल्पाहारी विद्यार्थिपञ्चलक्षणम्॥

अर्थात् -कौवे की तरह ज्ञान के लिए चेष्टा करना, बगुले के समान ध्यान अर्थात् चित्त को एकाग्र करना, कुत्ते की तरह निद्रा लेना, ब्रह्मचारी होना और थोड़ा भोजन करना- ये पाँच विद्यार्थी के लक्षण हैं।

शिव को भाए पावन सावन

ग्रीष्म ऋतु की तपिश और अकुलाहट के बाद मेघों से आबद्ध आसमान और धरती पर उमड़ती बरखा बहार जीव-जगत को प्रकृति का अनुपम उपहार है। वन-उपवन में हरियाली, फल-फूल से लदी पेड़-पौधों की डालियाँ, कोयल की कूक, नदी-तालाब और झरनों का कल-कल निनाद- यह धरती के सोलह श्रृंगार का आभास कराता है। वास्तव में श्रावण मास आशाओं-इच्छाओं की पूर्ति का मास है। ग्रीष्म के थपेड़े सहती प्रकृति जिस प्रकार सावन की बौछारों से अपनी प्यास बुझाती हुई असीम तृप्ति का आनंद पाती है, उसी प्रकार सावन मास प्राणियों के मन के सूनेपन को दूर करता है।

संपूर्ण दृश्यावली मानव मन में उमंग का संचार करने के साथ-साथ उसको प्रफुल्लित करते हुए जीवन के गीत भी सुनाती है। इसमें कवि मन गुनगुनाता है। किसान खेती में जुट जाता है और मनुष्य नूतन कल्पनाओं में खो जाता है। इस नजारे को लेकर सभी की अपनी-अपनी सोच या धारणा हो सकती है लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि यह शिवकृपा से ही संभव हो पाता है। वस्तुतः भगवान शिव प्रकृति के देवता हैं, इसलिए इसका असर प्रकृति पर भी दिखता है। ध्यान-साधना में उनका यही रूप निखर कर सामने आता है, जिसमें साधक उन्हें हिमालयवासी, सिर पर चंद्रमा, जटा में गंगधार, गले में सर्पमाल, तन पर मृगछाल, नख-शिख श्वेत धवल भभूत धारण किए, नंदी की सवारी और चारों ओर भूत-पिशाच गणादि के साथ पाता है। तभी तो समस्त सृष्टि में विस्तारित भक्तमंडल उन्हें देवाधिदेव महादेव बनाते हैं।

धर्मशास्त्र भी विभिन्न आयामों से इसकी गवाही देते हैं। शास्त्रों में उल्लेख है कि आषाढ़ शुक्ल एकादशी (देवशयनी एकादशी) पर जगत के पालनहार भगवान श्रीहरि क्षीरसागर में चार मास (चातुर्मास) की योगनिद्रा हेतु जाते हैं। अन्य सभी देवता भी सुविधानुसार शयन पर जाते हैं। ऐसे समय में नेतृत्व संभालते हुए माता पार्वती संग भगवान शिव जीव जगत के पालनार्थ व लोककल्याणार्थ मृत्युलोक में आते हैं।

मान्यता है कि इस अवधि में देवाधिदेव शिव ही एकमात्र ऐसे देवता हैं जो जाग्रत अवस्था में रहते हैं। इससे भक्ति और मनोकामना पूर्ति का अनूठा संयोग बनता है। भोलेनाथ मूलतः दानी हैं और मानवजाति की अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति करते हैं। अपने भक्तों के बीच आने का मोह बाबा को प्रिय है, तो भगवती पार्वती के लिए भी मनभावन है। वैसे भी सावन मास की उत्पत्ति श्रवण नक्षत्र से हुई है। इसका स्वामी चंद्र को माना गया है, जो भगवान शिव के मस्तक पर विराजमान हैं। श्रवण नक्षत्र जल का कारक माना गया है और इस नाते भी यह भगवान शिव को अतिप्रिय है।

श्रावण माहात्य में उल्लेख है कि योगाग्नि में स्वयं को भस्म कर शरीर त्यागने से पूर्व सती ने भगवान शिव को हर जन्म में पति के रूप में पाने का संकल्प व प्रण लिया था। अपने दूसरे जन्म में देवी सती हिमालय और देवी मैना के घर में पार्वती के रूप में जन्म लेती हैं, तो युवावस्था में ही निराहार रहकर कठोर तप और साधना कर भगवान शिव को प्रसन्न करती हैं। वह माह सावन ही था, जिसमें माँ पार्वती ने युगों तक तपस्या करके भगवान शिव को प्रसन्न किया और उनसे विवाह किया। ऐसे में इस माह को विशेष रूप से भक्तों के लिए फलदायी माना जाने लगा।

शास्त्रों-पुराणों पर ध्यान देने पर भगवान शिव नारी सशक्तीकरण के प्रेरक देवता के रूप में नजर आते हैं। सती के योगशक्ति से भस्म होने के बाद उनका रौद्र रूप इसका गवाह है, तो उनकी अर्द्धनारीश्वर छवि इसका प्रतीक है। कुंवारी कन्याएँ पूरे सावन माह हर सोमवार को शिव के समान स्त्री का सम्मान करने वाले पति की कामना से व्रत और जलाभिषेक करती हैं। जलाभिषेक के बारे में पौराणिक कथा है कि समुद्र मंथन के दौरान भगवान शिव ने जगत कल्याण के लिए समुद्र से अमृत के साथ निकले विष का पान कर लिया था। इससे उनका कंठ नीला पड़ गया और उनका नाम नीलकंठ हुआ।

ऐसा माना जाता है कि जिस माह में महादेव ने विषपान किया था, वह सावन माह ही था। विषपान से भगवान शिव के शरीर का ताप बढ़ने लगा, जिसे शांत करने के लिए देवों ने शीतलता प्रदान की, लेकिन इससे भी भगवान शिव की तपन शांत नहीं हुई। स्वयं आशुतोष भगवान शिव ने शीतलता पाने के लिए चंद्रमा को अपने सिर पर धारण किया, जिससे उन्हें शीतलता मिली। वहीं देवराज इंद्र ने आदिदेव के ताप को शांत करने के लिए घनघोर वर्षा की, जिससे भगवान शिव को शांति और शीतलता मिल सके। इसी घटना के बाद से सावन के महीने में शिव जी को प्रसन्न करने व शीतलता प्रदान करने के लिए जलाभिषेक किया जाता है। इसीलिए काशी समेत देश के सभी ज्योतिर्लिंगों में सावनपर्यन्त भक्तगण जलाभिषेक करते हैं।

इस माह में प्रकृति भी वातावरण की ऊष्णता शांत करने के लिए जलाभिषेक करती है। अलग-अलग तीर्थों में विभिन्न जल-धाराओं का महत्त्व होने के कारण शिवजी की प्रसन्नता के लिए कालांतर में काँवड़ यात्राओं का प्रचलन चला। इस पौराणिक व सामाजिक विधान के आरम्भ को लेकर मतान्तर भी हैं। मान्यता है कि इसकी शुरुआत शिवभक्त रावण ने की। कुछ लोग इसका आरंभ श्रवण कुमार से तो कई ऋषि परशुराम से भी मानते हैं। कहा जाता है कि ऋषि परशुराम ने काँवड़ में गढ़ मुक्तेश्वर (ब्रज घाट) से जल लाकर बागपत (उत्तरप्रदेश) के पास स्थित पुरा महादेव में प्राचीन शिवलिंग का जलाभिषेक किया था। आज भी लोग मनोकामना पूर्ति के लिए उस परम्परा का पालन करते हैं। उत्तर भारत के गंगातटीय शहरों में काँवड़ का विशेष महत्त्व माना गया है। इनका मुकाम बैजनाथ धाम हुआ करता है। पूर्व में काँवड़ यात्री गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ से जल लाते थे और प्रसाद के साथ जल देते थे। अब श्रद्धालु गंगाजी या मख्य तीर्थों के पास प्रवाहमान जलधारा से जल लेकर सावन में जलाभिषेक विधान पूरे करते हैं और चारों दिशाएँ 'हर-हर बम-बम' व 'हर-हर महादेव' के उद्घोष से गूंज उठती हैं।

बाबा भोलेनाथ को औघड़दानी भी कहा जाता है। इसके पीछे मान्यता है कि वे सिर्फ एक लोटा पानी और बेलपत्र से ही प्रसन्न हो जाते हैं और भावों में बहते हुए भक्तों को हर कामना पूरी होने का वरदान दे जाते हैं। दरअसल उनका यह प्रकृति प्रेम प्रदर्शित करने के साथ ही समभाव का संदेश भी है, जो वह संपूर्ण जीव जगत के प्रति दिखाते हैं और उपेक्षितों के प्रति भी समान रखने का भाव जगाते हैं। ऐसे में भक्तगण उनके पूजन-अनुष्ठान विधान में इसका उपयोग करते हैं। कालांतर में अभिषेक के लिए भावना के अनुसार दूध, तेल, पंचगव्य, शहद आदि को शामिल किया गया। इस माह में शिवालयों व घरों में षोडशोपचार, लघुरुद्र, महारुद्र या अतिरुद्र पाठ, सावन महात्य व शिवमहापुराण श्रवण का भी विधान है। सावन माह भगवान शिव को अतिशय प्रिय है। अतः हमें सावन में देवाधिदेव महादेव का अभिषेक कर पुण्य अर्जन करना चाहिए।

❑

एक धनी ने अपनी चारों पुत्रवधुओं की बुद्धि परीक्षा लेने के लिए उन्हें पाँच-पाँच धान के दाने दिए और कहा कि वह दो वर्ष बाद उनका लेखा-जोखा लेगा। एक बहू ने उन्हें कूड़े में फेंक दिया। सोचा कि घर में ढेरों धान भरा है। ससुर जी जब माँगेंगे तब दे देंगे। दूसरी ने चिड़िया को चुगा दिया। तीसरे ने रुमाल में बाँधकर उस अमानत को सुरक्षित रखा। चौथी ने पास की जमीन में उन्हें बोया और कई फसलें एक साल में काटते हुए बढ़ाकर उन्हें एक क्विंटल बना लिया। दो वर्ष बाद ससुर ने धान का ब्यौरा माँगा तो जिसने बोकर फसल बढ़ाई उसे बुद्धिमान माना, प्रशंसा की और उपहार दिया। वस्तुतः भगवान ने पाँच तत्त्व और पाँच प्राणों का यह जीवन दिया है। जो उसका गौरव बढ़ाते हैं वे भगवान का अनुग्रह प्राप्त करते हैं।

मानसून में करें जल संरक्षण

मानसून का इंतजार सभी को रहता है। मानसून मूलतः हिन्द महासागर, बंगाल की खाड़ी एवं अरब सागर की ओर से भारत के दक्षिण-पश्चिम तट पर आने वाली ऐसी मौसमी हवाएँ हैं, जो दक्षिण एशिया क्षेत्र में जून से सितंबर तक प्रायः चार महीने सक्रिय रहती हैं और इनके कारण भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश आदि में भारी वर्षा होती है। मानसून पूरी तरह से हवाओं के बहाव पर निर्भर करता है। आम हवाएँ जब अपनी दिशा बदल देती हैं तब मानसून आता है और जब ये हवाएँ ठण्डे क्षेत्रों से गर्म क्षेत्रों की ओर बहती हैं, तो उनमें नमी की मात्रा बढ़ जाती है, जिसके कारण बारिश होती है।

इस तरह मानसून भारतीय उपमहाद्वीप में स्वच्छ जल उपलब्ध कराने की एक प्रकृतिप्रदत्त व्यवस्था है। इसकी फुहारें पर्यावरण, खेती-किसानी, जन-समाज और सरकार के साथ देश की अर्थव्यवस्था पर अपनी गंभीर छाप छोड़ती है। इसलिए हर वर्ष अच्छे मानसून का सभी को इंतजार रहता है, विशेष रूप से यह कृषिकार्य हेतु किसी वरदान से कम नहीं है। हमारे देश की 49 फीसद भूमि खेतिहर है और सिंचाई के वैकल्पिक साधनों के विकास के बावजूद बड़ी मात्रा में उर्वर जमीन सिंचाई के लिए मानसून की बारिश पर निर्भर रहती है।

यही कारण है कि कृषि पर मानसून का सबसे अधिक असर पड़ता है, मानसून अच्छा हो तो कृषि की पैदावार अधिक होती है और मानसून कमजोर होने पर कृषि की पैदावार में गिरावट आ जाती है। इसमें अन्न या तो पैदा नहीं होता और यदि पैदा हो भी जाता है तो पानी की कमी के कारण फसल सूख जाती है और इससे किसानों को बहुत नुकसान होता है। इसलिए आकाश से बरसने वाली जल की बूँदें किसानों के लिए अमृत के समान होती हैं, जो उनके अन्न की, फसल की पैदावार को दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ाती हैं।

यदि जलसंग्रह की उचित व्यवस्था हो तो मानसून का जल केवल खरीफ की फसल के लिए ही उपयोगी नहीं होता, अपितु यह रबी की फसल के लिए भी बहुत काम आता है। जल संग्रहण से देश में बिजली उत्पादन भी होता है और इस जलराशि के शुद्धिकरण से पेयजल की किल्लत को भी दूर किया जा सकता है।

भारतीय रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर डी सुब्बाराव ने एक बार मौद्रिक नीति की समीक्षा करते हुए कहा था कि भारत का जीवन कल्याण मानसून के प्रदर्शन पर निर्भर करता है। पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने भी एक बार यह कहा था कि भारत का वास्तविक वित्त मंत्री मानसून है। देखने में तो यह सामान्य बात लगती है, लेकिन उनकी इस बात के मायने बहुत गूढ़ हैं क्योंकि मानसून हमारे देश की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और लोकाचार की गतिविधियों में रचा-बसा है। यह मात्र चार महीनों के दौरान देश की धरती पर इतना पानी उड़ेल देता है कि अगर हम उसे सहेज लें, तो साल भर की जलसबन्धी जरूरतों को सहजता से पूरा किया जा सकता है।

विडम्बना है कि देश में भौतिक विकास के साथ-साथ जल संचयन की तकनीकों पर ध्यान नहीं दिया गया। शहरीकरण के नाम पर विकास तो बहुत हुआ, लेकिन इस विकास से धरती और जल का सम्पर्क ही न्यून हो गया, क्योंकि शहरी क्षेत्रों के अधिकांश भूभाग में कंक्रीट बिछा हुआ है, इसके कारण जल धरती की ऊपरी सतह पर तो गिरता है, लेकिन धरती के अन्दर नहीं पहुँच पाता, यानि धरती उसे सोख नहीं पाती और यह जल बह जाता है। इस तरह नदियों, नालों से बहते हुए यह जल वापस समुद्र में चला जाता है। कई बार तो जल के तेज बहाव व जलभराव के कारण बाढ़ के भीषण दृश्य उपस्थित हो जाते हैं और इसमें जन-धन का बहुत नुकसान होता है।

भारत का वार्षिक वर्षा औसत 110 सेण्टीमीटर है। यदि इतने जल को भूमि के ऊपर रोक लिया जाए, तो इससे पूरा भारत साढ़े तीन फीट से कुछ अधिक ऊँचाई तक जलमग्न हो जाएगा।

इस बारिश के मात्र 40 प्रतिशत को ही भूजल की कोटरियों में उतार दिया जाए, तो भारत का भूजल स्तर हर वर्ष ऊपर उठने लगेगा। वर्षा जल के कुशल प्रबंधन द्वारा बाढ़सभावित क्षेत्रों में भी उचित व्यवस्था बनायी जा सकती है और हर वर्ष होने वाली इन आपदाओं से निजात पाया जा सकता है।

वर्षा ऋतु आने से पहले ही यदि नगरीय नाले-नालियों को कचरामुक्त तथा तालाबों को गादमुक्त कर लिया जाए तो आबादी को बाढ़ से और सड़कों को गंदगी से बचाया जा सकता है। बारिश होने पर साफ नाले-नालियों के पानी को भूमिगत टैंकों में डाला जा सकता है। ये टैंक पार्कों, मैदानों आदि में नीचे बनाए जा सकते हैं और फिर ये नगर ऐसे पानी को शोधित करके जलापूर्ति के मामले में स्वावलम्बी हो सकते हैं।

इसी तरह ग्रामीण इलाकों में ऊँची मेड़बंदी करके बारिश के पानी के जरिए इतनी नमी को खेतों में रोका जा सकता है कि इससे चौमासे में अतिरिक्त सिंचाई ही न करनी पड़े। धान की पराली तथा अनुकूल पत्तों को जलाने की बजाय बारिश आने से पहले यदि खेतों में ही बिछा दिया जाए, तो इससे खरपतवार कम उगेंगे और जोताई-बोआई से पहले बरसने वाला पानी कम से कम वाष्पित होगा। इससे खेतों में ज्यादा लंबे समय तक नमी बरकरार रहेगी, इसके साथ ही पराली व पत्ते सड़कर मिट्टी की उर्वरक क्षमता बढ़ाएँगे। पुराने कुओं व तालाबों का जीर्णोद्धार करके उनमें वर्षा के जल का पर्याप्त मात्रा में संचयन किया जा सकता है। ऐसे तालाब सूखे का दंश झेल रहे ग्रामीणों के लिए वरदान साबित हुए हैं।

उदाहरण के लिए मध्य प्रदेश के छोटे से जिले देवास में हर गाँव ने साल भर खेतों की सिंचाई की व्यवस्था करने का अनोखा तरीका निकाला है जिसमें किसानों ने अपने खेतों में तालाब बनाए हैं, जिनमें साल भर के लिए पर्याप्त मात्रा में वर्षा जल संरक्षित किया जा सके। इसमें औसतन हर तालाब 8 फीट लंबा और 10 फीट गहरा होता है। यह तकरीबन एक हेक्टेयर जमीन घेरता है, जिससे 8 से 10 हेक्टेयर जमीन को साल भर सींचा जा सकता है, इससे अनाज की पैदावार 300 फीसद तक अधिक करी जा सकती है।

इन तालाबों के बनाए जाने के बाद जिले का कुछ सिंचित क्षेत्र बढ़ा है और यहाँ के किसानों ने दो से अधिक तक फसलें बोईं, जिनकी पैदावार अधिक हुई और सिंचाई के लिए बोरवेल चलाने के लिए रात-रात भर जागकर बिजली का इंतजार करने की किसानों की मुसीबत भी समाप्त करी जा सकती है।

इस तरह मानसून के मौसम में गाँवों व शहरों में जल संग्रहण की व्यवस्था द्वारा साल भर होने वाली जल सबन्धी समस्याओं से मुक्त हुआ जा सकता है और जल के कुशल प्रबंधन द्वारा अपनी धरती के भू-जल स्तर को भी समृद्ध किया जा सकता है। ❑

हजरत अबूबकर मदीना के खलीफा थे। वे सदैव दीन-दुखियों की सेवा किया करते थे। एक बार उन्हें मालूम हुआ एक वृद्धा के पास भोजन का भी कोई साधन नहीं है। खलीफा वृद्धा के जागने से पहले ही उसकी झोंपड़ी में पहुँचे, वहाँ सफाई की और उसके लिए भोजन रखकर चुपचाप लौट आये। वृद्धा ने साफ घर व वहाँ रखे भोजन को देखा तो उसने सोचा कि कोई दरियादिल व्यक्ति रख गया होगा। खलीफा अब रोज ऐसा ही करने लगे। एक दिन बुढ़िया ने सोचा कि देखना चाहिए कि यह सब कौन व्यक्ति करता है। वह प्रातः ही जाग गयी। खलीफा के आते ही उसने दिया जलाकर देखा कि उसकी सेवा करने वाले स्वयं खलीफा हैं। उन्हें देखकर उसकी आँखों में खुशी के आँसू आ गये।

गुरुवर द्वारा प्रतिपादित मनोआध्यात्मिक अयास

आधुनिक युग में मानवीय सभ्यता ने विकास और प्रगति के जो आयाम विकसित किये हैं, उनमें कप्यूटर और इन्टरनेट का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज की पीढ़ी इनके बगैर जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकती। यद्यपि इन्टरनेट का संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन आदि क्षेत्रों के विकास में अत्यन्त योगदान है तथापि इसके नकारात्मक प्रभावों को भी नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। मानव समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है, जिसके लिए इन्टरनेट आज एक आवश्यकता मात्र न रहकर व्यसन बन चुका है। ये ही कारण है कि आज जीवन के सभी स्तरों पर इन्टरनेट के घातक परिणाम सामने आने लगे हैं।

सामान्य जीवन दृष्टि से आज का समय इन्टरनेट का है। वर्तमान परिस्थितियों में इसकी आवश्यकता, महत्त्व और उपयोग एक निर्विवाद सत्य है। हम इन्टरनेट को अपने जीवन से पूरी तरह अलग नहीं कर सकते किन्तु यह भी एक तथ्य है कि हम इन्टरनेट पर व्यतीत करने वाले समय का प्रबन्धन करके एवं कुछ अनुशासनों को अपनाकर इनसे उत्पन्न होने वाली घातक समस्याओं के शिकार होने से बच सकते हैं। हम ऐसे अनेक उपाय कर सकते हैं, जिनसे कि हम इन्टरनेट के व्यसन से ग्रस्त न हों और इन्टरनेट का हमारे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव न पड़े।

इन्टरनेटयूजर्स की बढ़ती समस्याओं को ध्यान में रखते हुए विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय के योग विज्ञान विभाग के अन्तर्गत एक विशेष एवं महत्त्वपूर्ण शोध कार्य सपन्न किया गया है। इन्टरनेट के अत्यधिक उपयोग करने की आदत से लोगों को शारीरिक एवं मानसिक समस्याओं का शिकार होते देखा जा रहा है। साइबर प्रयोक्ताओं में चिन्ता, तनाव, अवसाद जैसे मनोविकारों की समस्या अत्यधिक तीव्र गति से बढ़ रही है। ऐसे में यह विशेष शोध अध्ययन साइबरयूजर्स के लिए अत्यन्त उपयोगी, लाभकारी और सार्थक परिणाम लाने के साथ अपनायी जाने योग्य तकनीकों की वैज्ञानिक पद्धति से व्याख्या-विवेचना प्रस्तुत करता है।

यह अध्ययन सन् 2019 में शोधार्थी कृष्णा अग्रवाल द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं प्रो. हेमाद्रि कुमार साव के निर्देशन में पूरा किया गया है। इस प्रायोगिक अध्ययन का विषय है- 'पं. श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा प्रतिपादित मनो-आध्यात्मिक अयासों का साइबर प्रयोक्ताओं (साइबर यूजर्स) के चिन्ता एवं अवसाद स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।' इस अध्ययन का उद्देश्य साइबर प्रयोक्ताओं की मनोवैज्ञानिक समस्याओं की पहचान करना, उनके चिन्ता, अवसाद स्तर का मापन एवं समाधान एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं के प्रबन्धन के लिए मनो-आध्यात्मिक मॉडल को विकसित करना है।

अपने अध्ययन के लिए शोधार्थी ने आकस्मिक प्रतिचयन विधि द्वारा हरिद्वार, ऋषिकेश, मेरठ और दिल्ली से कुल 300 लोगों का चयन किया। इन चयनित लोगों की उम्र 18 से 40 वर्ष तक थी एवं सभी न्यूनतम 5 से 6 घण्टे इन्टरनेट पर व्यतीत करते थे। दूसरे चरण में पुनः आकस्मिक प्रतिचयन द्वारा 100 लोगों का (चयनित 300 में से) चयन कर 50-50 के दो प्रयोगात्मक समूह बनाये गये। एक समूह पर चिन्ता एवं दूसरे पर अवसाद सबन्धी समस्या का अध्ययन किया गया। यह भी उल्लेखनीय है कि शोधार्थी ने इन चयनित लोगों में स्त्री और पुरुष प्रयोक्ताओं का अनुपात समान रखा।

प्रयोग प्रारम्भ करने से पूर्व शोधार्थी द्वारा सभी चयनित लोगों का शोध उपकरणों के माध्यम से परीक्षण किया गया। अध्ययन में जिन उपकरणों का उपयोग किया गया; वे हैं- ए. के. पी. सिंह और एल. एन. के. सिन्हा द्वारा निर्मित सिन्हा काप्रिहेन्सिव एन्जाइटी टेस्ट तथा गौरव अग्रवाल द्वारा हिन्दी अनुवादित पर्सनल असेसमेंट इन्वेन्ट्री।

परीक्षण के उपरान्त छः मास की अवधि तक शोधार्थी द्वारा चयनित प्रयोक्ताओं को नियमित मनो-आध्यात्मिक अभ्यास

कराया गया। इस अभ्यास में चिन्ताग्रस्त साइबरप्रयोक्ताओं को 45 मिनट प्रतिदिन जो मनोआध्यात्मिक अभ्यास कराया गया उनमें निम्न यौगिक प्रक्रियाऐं समिलित की गईं- 1. आत्मबोध साधना-प्रतिदिन जागरण के साथ, 2. प्रार्थना- 10 मिनट प्रतिदिन, 3. प्रज्ञायोग-10 मिनट, 3 आवृत्ति, 4. प्राणाकर्षण प्राणायाम-10 मिनट, 5 आवृत्ति, 5. अमृतवर्षा रसानुभूति ध्यान-15 मिनट, 6. तत्वबोध साधना-शयन से ठीक पूर्व, 7. आध्यात्मिक परामर्श-15 मिनट, सप्ताह में एक दिन। इसी तरह अवसादग्रस्त साइबर प्रयोक्ताओं के लिए प्रयुक्त की गई मनोआध्यात्मिक प्रक्रियायें हैं- 1. प्रार्थना-10 मिनट, 2. प्रज्ञायोग-10 मिनट, 3 आवृत्ति, 3. प्राणाकर्षण प्राणायाम-10 मिनट, 5 आवृत्ति, 4. आध्यात्मिक परामर्श-15 मिनट, सप्ताह में एक बार।

दोनों समूहों के अभ्यास का समय प्रातः 6 बजे से 6.45 तक नियत रखा गया। शोध प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर पुनः सभी का उपकरणों के माध्यम से परीक्षण किया गया। तत्पश्चात् दोनों परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का संग्रहण कर उनका सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर परिणाम के रूप में शोधार्थी ने यह पाया कि मनोआध्यात्मिक अभ्यास का साइबरयूजर्स के चिन्ता एवं अवसाद स्तर पर सकारात्मक एवं सार्थक प्रभाव पड़ता है।

उल्लेखनीय है कि इस अध्ययन में जो सार्थक एवं लाभकारी परिणाम प्राप्त हुये हैं उनके पीछे मुख्य कारण शोध में अपनाई गई मनोआध्यात्मिक प्रक्रियाऐं हैं। इन प्रक्रियाओं में प्रत्येक प्रक्रिया ऐसी विशेष और उपयोगी तकनीक है, जो मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ सपूर्ण जीवन पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। शोधार्थी द्वारा अपनायी गई विशेष यौगिक अभ्यास की प्रथम तकनीक है-आत्मबोध और तत्वबोध की साधना।

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा प्रतिपादित यह साधना जीवन शैली प्रबन्धन की अत्यन्त प्रभावकारी और उत्कृष्ट विधि है। यह साधना जीवन को सजगतापूर्ण और विवेकपूर्ण ढंग से उपयोगी बनाने की कुशलता प्रदान करती है। इसके अभ्यास से व्यक्ति को प्रत्येक दिन को औचित्यपूर्ण, उद्देश्यपरक और तनावमुक्त जीने की प्रेरणा प्राप्त होती है। साथ ही स्वयं का मूल्यांकन, कार्यक्षमता का नियोजन, समय प्रबंधन जैसी योग्यताओं का विकास भी होता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से चिन्ता, अवसाद, तनाव में कमी आती है एवं आत्मविश्वास, प्रेरणा, निर्णय क्षमता आदि अनेक आन्तरिक क्षमताओं का विकास होता है।

अध्याय की दूसरी यौगिक तकनीक है-प्रार्थना। प्रार्थना-तनावमुक्त एवं चिन्तामुक्त जीवन जीने की एक अत्यन्त प्रभावकारी साधना है। इसे अध्यात्म जगत में चिन्तन, चरित्र और व्यवहार को रूपान्तरित करने वाली विशेष एवं अद्‌भुत प्रक्रिया का स्थान प्राप्त है। इसके नियमित अभ्यास से गंभीर मनोविकारों से मुक्ति प्राप्त होती है एवं जीवनी शक्ति व आन्तरिक क्षमताओं का विकास होता है। चिन्ता, अवसाद के निवारण में प्रार्थना के असाधारण लाभ प्राप्त होते हैं।

तीसरा यौगिक अभ्यास है-प्रज्ञायोग व्यायाम। यह परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा प्रतिपादित 16 चरणों में विशिष्ट आसनों एवं प्राणायाम की एक सपूर्ण श्रृंखला है। इसके साथ गायत्री मंत्र को भी संयुक्त किया जाता है। इसका अभ्यास आश्चर्यजनक रूप से शरीर और मन को आरोग्य प्रदान कर संतुलित और क्षमतायुक्त बनाता है। मनोशारीरिक लाभों के साथ-साथ प्रज्ञायोग के नियमित अभ्यास से व्यक्ति आध्यात्मिक लाभ भी प्राप्त करता है।

चौथा यौगिक अभ्यास- प्राणाकर्षण प्राणायाम है। चिंता, अवसाद, तनाव आदि की अवस्था में शारीरिक क्रिया विज्ञान की दृष्टि से अनेक ऐसे आन्तरिक स्राव उत्पन्न होते हैं जो स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। ऐसे में मन शांत एवं एकाग्र करने के लिए प्राणायाम की प्रक्रिया को महत्त्वपूर्ण माना गया है। प्राणाकर्षण प्राणायाम के अभ्यास से अनुकंपी एवं परानुकंपी तंत्रिका तंत्र में सन्तुलन स्थापित होता है, जिससे चिन्ता, तनाव और अवसाद स्तर में कमी आती है। समग्र स्वास्थ्य पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

शोध की पाँचवीं यौगिक साधना विधि है-अमृतवर्षा रसानुभूति ध्यान। यह परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा प्रतिपादित एक विशिष्ट यौगिक अभ्यास है। इसमें साधक अपनी भावनाओं की प्रगाढ़ता में स्वयं को सपूर्ण रूप से उस परमात्म शक्ति में समर्पित करने का प्रयास करता है, जिस परमात्मा का स्वरूप अनन्त करुणा, प्रेम, स्नेह, कृपा, आशीर्वाद, शक्ति और आनन्द से परिपूर्ण

है। अमृतवर्षा रसानुभूति ध्यान के अभ्यास से एकाग्रता, मानसिक क्षमताओं का विकास, स्वानुभूति, पवित्रता और शांति तथा प्रसन्नता की प्राप्ति होती है तथा समस्त मनोविकारों का शमन होता है।

छठी प्रक्रिया-आध्यात्मिक परामर्श है। इसमें चिन्ता एवं अवसादग्रस्त व्यक्ति को आन्तरिक संबल प्रदान कर उसे स्वयं अपनी समस्या की पहचान करना एवं उस पर नियंत्रण रखने की तकनीकें सिखाई जाती हैं, जिनसे वह कुछ ही अवधि में स्वास्थ्य लाभ कर जीवन को पुनः सकारात्मक तरीके से आगे बढ़ाता है। इस प्रकार यह शोध प्रयास साइबर यूजर्स के मानसिक स्वास्थ्य संवर्द्धन के लिए अत्यन्त उपयोगी और सार्थक समाधान प्रस्तुत करता है और मानसिक व्याधियों के निवारण की प्रभावकारी तकनीकें एवं उपाय भी देता है।

❑

पतिव्रत की साधिका शाण्डिली को रुग्ण पति मिला। किसी पूर्वजन्म के कुकृत्य से वह कुष्ठ रोग से पीड़ित था एवं चलने-फिरने में भी अशक्त था। इन सबके बावजूद शाण्डिली की तपस्या अनवरत चलती थी। दुर्बल व्यक्तित्व समर्थ को खोजता है और समर्थ अशक्तों की सहायता में ही अपनी सार्थकता देखता है। रुग्ण पति से उसे कोई शिकायत न थी। अपनी आवश्यकतापूर्ति के लिए उसके पास हाथ-पैर थे और उसके साथ परमात्मा का अनुग्रह था कि सेवा वृत्ति के विकास के लिए घर में ही अवसर प्रदान किया हुआ था।

शाण्डिली ईश्वर के अनुग्रह के रूप में अपने रुग्ण पति को देवतुल्य मानती थी और यह मानती थी कि स्वयं भगवान रोगी का स्वरूप धारण करके उसके विकास के लिए वहाँ उपस्थित हैं। एक दिन अँधेरी रात में पति को पीठ पर लिए वह चली जा रही थी। मार्ग में माण्डव्य ऋषि तपस्या में लीन थे। अंधकार में दिखाई न देने के कारण उसके पति का पैर महर्षि से टकरा गया। महर्षि ने इसे अपना अपमान मानते हुए क्रोध में आकर श्राप दिया- जिस व्यक्ति ने यह दुष्टता की है, वह सूर्योदय होते ही मृत्यु को प्राप्त होगा।

शाण्डिली ने यह सुनकर महर्षि को स्पष्टीकरण भी दिया परंतु कोई लाभ न निकला। अपनी व्रतशीलता से सांसारिक भयानक रोग को साधना एवं प्रगति का सोपान बनाने वाली नारी की सामर्थ्य को प्रकट रूप में आना ही पड़ा। शाण्डिली ने कहा- मैं निरपराध होकर वैधव्य का दण्ड नहीं भोगूँगी। यदि सूर्योदय के साथ पति की मृत्यु आने वाली है तो आज सूर्योदय ही नहीं होगा। पतिव्रता के व्रत की अवहलेना करने का साहस सूर्यदेव में भी न था। उन्होंने निकलने से मना कर दिया। समस्त सृष्टि में हाहाकार मच गया। ऋषि माण्डव्य ने अपनी भूल तो समझी परंतु छोड़ा हुआ तीर वापस करने की क्षमता का अभाव स्वयं में पाया। शाण्डिली के पति को दिया श्राप वे वापस नहीं ले सके। ऐसे में सती अनुसूईया आगे आयीं और शाण्डिल्य को बोलीं- बहन! सूर्योदय होने दो, तुहारे पति को मैं जीवित कर दूँगी। दोनों सती नारियों के तेज का प्रमाण पाकर सारा संसार धन्य-धन्य कह उठा।

सुख-दुःख के विविध रंग

दुनिया हमें रंग-बिरंगी दिखती है, हमारी आँखें जितनी अच्छी होती हैं, उतनी ही स्पष्ट हमें दुनिया दिखती है और यदि आँखों के लेंस में किसी तरह की गड़बड़ी आती है तो हमें दिखने में भी दिक्कत महसूस होने लगती है। आँखें केवल वही रंग नहीं दिखातीं, जो वास्तव में हैं। यदि हमारी आँखों पर रंगीन चश्मा है, तो जिस रंग का वह चश्मा है, दुनिया भी हमें उसी रंग की दिखाई पड़ती है।

रंगों से हमें सुख की अनुभूति भी होती है और दुःख की भी। कुछ रंग हमें बहुत अच्छे लगते हैं, मन को बहुत भाते हैं और कोई-कोई रंग हमें बिल्कुल ही नापसंद होते हैं। जो रंग हमें अच्छे लगते हैं, उन्हें देखकर मन प्रफुल्लित हो उठता है और जो रंग हमें बिल्कुल अच्छे नहीं लगते, उन्हें देखकर मन दुःखी हो जाता है। यदि हमारे पास मनपसंद रंग के परिधान, वस्तु या कोई उपहार हैं, तो उन्हें देखकर हमें बहुत खुशी होती है, लेकिन यदि हमारे पास नापसंद रंग की कोई वस्तु है तो उसका उपयोग करने में भी हम कतराते हैं।

कोई-कोई रंग दूर से बहुत अच्छे लगते हैं, लेकिन उनके नजदीक जाने पर वह रंग हमें उतना अच्छा नहीं लगता, जितना दूर से वह हमें अच्छा लगता है। कभी-कभी इसके विपरीत भी होता है, यानि जो रंग हमें दूर से अच्छा नहीं लगता, नजदीक जाने पर वह हमें अच्छा लगने लगता है। कारण यह है कि दूर से देखने पर वह रंग हमें उतना स्पष्ट नहीं दिखता, जितना नजदीक जाने पर दिखता है और नजदीक से देखने पर जो उसका वास्तविक रंग उभरकर आता है, हमें अच्छा लगता है। वहीं इसके विपरीत दूर से सुन्दर रंग, मनभावन रंग दिखने पर भी उसके नजदीक जाने पर यदि उसका वास्तविक रंग सुन्दर नहीं होता, तो हमें वह पसंद नहीं आता।

हमारे जीवन के साथ भी यही घटित होता है। दूर से देखने पर जो सुख, ऐश्वर्य एवं प्रतिष्ठा हमें मनभावन प्रतीत होते हैं, कभी-कभी नजदीक से, गहराई से उनके देखने पर वे उतने ही दर्द, पीड़ा से भरे दिखाई पड़ते हैं। दूर से देखने पर हमें जो जितना सुखी प्रतीत होता है, नजदीक से उसकी वास्तविकता यदि पता चले, तो बहुत कम लोग ही ऐसे मिलते हैं, जो वास्तव में अपने सुख से सुखी होते हैं। ऐसे ही कुछ का जीवन हमें दूर से देखने पर कष्टपूर्ण, अभावपूर्ण दिखता है, नजदीक से देखने पर ऐसे लोग अपने जीवन से सन्तुष्ट, प्रसन्न व सुखी भी देखे जाते हैं।

इस तरह यदि सुख के कई रूप व रंग हैं तो दुख के भी अनेकों रंग-रूप हैं, जो हमारी जिन्दगी में हमारे समुख समय-समय पर आते हैं। कभी ये हमें सुख की अनुभूति देते हैं, तो कभी दुःख की। सुख-दुःख रूपी जिन्दगी के ये रंग जितने पक्के हैं, उतने कच्चे भी हैं अर्थात् पक्के रंग छूटते नहीं हैं और कच्चे रंग आसानी से छूटने लगते हैं। जैसे- किसी का कोई सुख उसके साथ पूरी उम्र बना रहता है, तो किसी का कोई दुःख उसके पूरे जीवन साथ रहता है। किसी का कोई सुख अल्प समय के लिए होता है, यानि उसके सुख का रंग कच्चा होता है तो कभी किसी का कोई दुःख उसके साथ अधिक समय तक नहीं रहता, यानि उसके दुःख का रंग कच्चा होता है।

जीवन के सुख-दुःख का रंग भले ही हमें कच्चा या पक्का रंग प्रतीत हो, लेकिन ये हमारी मानसिकता व दृष्टिकोण है कि हम अपने जीवन के सुख या दुःख के रंग को पक्का करना चाहते हैं या कच्चा। यदि हम उसे पक्का करना चाहते हैं तो हम उसके बारे में सोचते हैं, उसके लिए सरंजाम जुटाते हैं और यदि हम उसे कच्चा करना चाहते हैं तो हम उस पर ज्यादा ध्यान नहीं देते। वास्तव में सुख या दुःख के रंग हमारे मन पर निर्भर करते हैं। जिस भी परिस्थिति में हमें आनन्द महसूस होता है, वह हमें सुख देता है और जो भी परिस्थिति हमें दुःखी व पीड़ित करती है, वह हमें दुःख देती है।

प्रायः हम सुख की अनुभूतियों को ज्यादा देर महसूस नहीं कर पाते, उन्हें अपनी स्मृति में अधिक समय तक संजोकर नहीं रख पाते, इसलिए सुख की अनुभूतियाँ हमें कम प्रतीत होती हैं, वहीं दुःख की स्मृतियों को, पीड़ा के क्षणों को हम अपनी स्मृति में बार-

बार कुरेदते हैं, उन्हें बार-बार स्मरण करते हैं और दुःखी होते हैं, इसलिए जीवन में दुःख की अनुभूतियाँ अधिक प्रतीत होती हैं और यही कारण है कि प्रायः जीवन हमें दुःखों का अंबार प्रतीत होता है, जिसमें सुख बहुत कम होता है।

जीवन में सुखद अनुभूतियों का रंग हमें इसलिए इतना भाता है, आनन्दित करता है, व प्रसन्नता देता है क्योंकि इसके विपरीत दुखद अनुभूतियों के रंग से हम परिचित होते हैं, इसके दुःख, पीड़ा व कष्ट से हम परिचित होते हैं। यदि हम इनसे परिचित न होते, तो शायद सुख की अनुभूति हमें उतना सुखी न कर पाती।

यदि किसी के जीवन में सुख ही सुख है, तो वह अपने सुख से उतना सुखी नहीं हो पाता, जितना उसे दूर से देखने वाला व्यक्ति उसे देखकर यह सोचता है कि वह कितना सुखी व्यक्ति है। इसी तरह यदि किसी के जीवन में दुःख ही दुःख है, तो वह अपने दुःख से उतना दुःखी नहीं होता, जितना उसे दूर से देखने वाला व्यक्ति उसे देखकर यह सोचता है कि वह बहुत दुःखी है। यदि जीवन में बहुत दुःख हैं तो व्यक्ति उनसे उबरने का कोई न कोई तरीका ढूँढ ही लेता है। वह धीरे-धीरे दुःखी परिस्थितियों में जीने का इतना अभ्यस्त हो जाता है कि उसके लिए कभी-कभी वही सुख के समान हो जाता है, जबकि अन्य किसी व्यक्ति के लिए वह परिस्थिति किसी बड़े दुःख से कम नहीं होती।

सुख के बिछौने में पलने वाला व्यक्ति दुःख के कष्टों को सह नहीं पाता, जबकि दुःख के धरातल पर पलने वाला व्यक्ति सुख के बिछौनों में आराम से रह पाता है। सुख जीवन में फूल के समान है, जो नाजुक व कोमल हैं लेकिन दुःख काँटों के समान है, जो हमें काँटों के समान चुभता है, लेकिन दुःख के रास्तों से गुजरने वाला व्यक्ति इतना मजबूत हो जाता है कि वह अपने जीवन के कठिन रास्तों को पार करने के साथ ही साथ सुख के रास्तों पर भी संभल कर चलता है और इन्हें अंततः पार कर ही लेता है। इसके विपरीत सुख के रास्तों पर चलने का अभ्यस्त व्यक्ति दुःख के कंटकों भरे रास्तों पर आसानी से चल नहीं पाता।

सुख-दुःख के विविधतापूर्ण रंग हमारे जीवन में हैं। सुख या दुःख हर एक पर एक जैसा असर नहीं डालते हैं। किसी को थोड़े से सुख में अधिक सुख महसूस होता है तो किसी को अधिक सुख में भी थोड़ा ही सुख महसूस होता है। किसी को अधिक दुःख भी कम दुःखी करता है तो किसी को कम दुःख भी अधिक दुःखी कर देता है। सुख या दुःख का महसूस होना इस बात पर निर्भर करता है कि हम परिस्थितियों को कैसे देखते हैं। उदाहरण के लिए यदि हमने किसी बड़ी उपलब्धि की उम्मीद की थी और हमें छोटी उपलब्धि मिली तो हमारी खुशी अधूरी ही रहेगी। इसके विपरीत यदि हम छोटी उपलब्धि की उम्मीद लगाए हुए थे और हमें कोई बड़ी उपलब्धि मिल गयी, तो इससे हमारी खुशी दोगुनी हो जाएगी।

वास्तव में सब पर एक जैसे रंग न तो खिलते हैं और न ही टिकते हैं। अंधेरे में जो तस्वीर हमें नजर आती है, वास्तव में वह कुछ और ही होती है। इस तरह अंधेरे में हमारा वास्तविकता से परिचय कम ही होता है और भ्रम से ही अधिक आमना-सामना होता है जबकि रोशनी में हम वास्तविकता से परिचित होते हैं और हमारे भ्रम मिटते हैं। कभी-कभी अधिक रोशनी में भी हमें भ्रम हो जाता है और हमें स्पष्ट रूप से समझ नहीं आता जैसे- मृगमरीचिका में मृग को यह प्रतीत होता है, कि थोड़ी दूर में पानी है, जबकि जल का उसे आभास जहाँ होता है, वहाँ जल नहीं होता। इस तरह मृग प्यासा ही जल की आस में भटकता रहता है क्योंकि उसे जल मिलने की उम्48मीद रहती है।

रंग विज्ञान कहता है कि सभी रंगों को मिला देने पर सफेद रंग बनता है। रोशनी या प्रकाश जब किसी पर पड़ती है तो उसके रंग दिखते हैं। कोई वस्तु उसी रंग की दिखती है, जिस रंग को वो परावर्तित करती है। जैसे- लाल फूल, रोशनी के लाल रंग को छोड़कर बाकी रंग सोख लेता है। हरी घास, हरा रंग छोड़कर बाकी रंगों को अवशोषित कर लेती है।

इस तरह जिंदगी में जो भी रंग ऊपर दिखता है, उससे कहीं अधिक रंग भीतर होते हैं। जब लगे कि हम किसी एक रंग पर अटक गए हैं तो समझ जाएँ कि अब कुछ और रंगों को पकड़ने का समय आ गया है। हमारे जीवन के कैनवस पर वो रंग होने चाहिए, जो हमें पसंद हैं। वो रंग दूसरों से मिलते-जुलते भी हो सकते हैं और उनसे अलग भी।

प्रसिद्ध लाईफ कोच पीटर कबैक्सी के अनुसार-केवल सफेद और काले रंग में चीजों को देखने का मतलब है कि हम अपने दिमाग का पूरा इस्तेमाल नहीं कर रहे हैं। सही फोकस बनाए रखते हुए हम जीवन में बेहतर एंगल चुन सकते हैं।

मनोविज्ञान कहता है कि हम नकारात्मकता की ओर तेजी से बढ़ते हैं। अच्छे विचारों की तुलना में बुरे विचार तेजी से फैलते हैं और यही कारण है कि हम सुख को भूल जाते हैं और दुःख को देर तक पकड़े रहते हैं। इससे हमारे दिमाग में कड़वी यादें इतनी सघन हो जाती हैं कि हम बार-बार घूम-फिरकर उसी में उलझे रहते हैं।

किसी भी एक अच्छे विचार को अपने मस्तिष्क में बैठाने के लिए हमें तकरीबन पाँच बुरे विचारों को हटाना पड़ता है। अच्छे विचारों को बार-बार दोहराना पड़ता है, तब जाकर किसी एक अच्छे विचार की दिमाग में जगह बन पाती है। 'आर वी हार्डवायर्ड टु बी पॉजिटिव ऑर नेगेटिव' लेख में रे विलियस लिखते हैं- बड़ी बारीकी से हम मन की नकारात्मकता दूर करते चले जाते हैं और अच्छे पलों में भी बुरी या बेकार की बातें सोचते रहते हैं और फिर शिकायत करते हैं कि जीवन इतना जटिल क्यों है।

हर दिन सूरज उगता और ढलता है, फिर भी हर दिन यह दृश्य अलग होता है। प्रकृति तो रंगों का खजाना है। वह सहज ही हर दिन अनेक रंग बदलती है और नित-नवीन रूप में उभरकर आती है। यदि हमारे जीवन में हालात मुश्किल हों तो भी यह तय है कि वे एक से नहीं रहेंगे। दुख-दर्द व सुख का कोई रंग स्थायी नहीं होता, उसका बदलना तय है। इसलिए यदि विपरीत हालातों में हमें कुछ नहीं सूझ रहा, हम कुछ नहीं कर पा रहे तो हमारे पास जो भी है, उसे सहेजते हुए हमें सही रोशनी का इंतजार करना चाहिए और अनुकूल रंगों को खुद से जुड़ते हुए देखना चाहिए।

जिन्दगी में अपनी परिस्थितियों से बचने और डरने से कुछ हासिल नहीं होता, क्योंकि हमें अपने जीवन के वास्तविक रंगों को जीना सीखना होता है। जबरदस्ती ओढ़े हुए रंग देर तक नहीं टिकते। डरा-धमका कर या झाँसे में रखकर दूसरों को चढ़ाए रंग भी समय आने पर उतर ही जाते हैं। ऐसे रंग खिलते नहीं, बल्कि बदरंग हो जाते हैं।

इसलिए यदि हम अपने जीवन के रंगों को दूसरों के जीवन में उतारना चाहते हैं, तो हमें दूसरों के रंगों को स्वीकारना भी आना चाहिए। यदि हम अपने जीवन के रंगों को उन्मुक्त भाव से जीना चाहते हैं तो हमें दूसरों के जीवन के रंगों को भी उन्हें प्रसन्न भाव से जीने के लिए स्वतंत्रता देनी चाहिए।

रंग वही पक्का होता है, जो जीवन का प्राकृतिक व वास्तविक रंग होता है और वही रंग कच्चा होता है, जो बनावटी, कृत्रिम व नकली होता है। इसलिए हमें अपने जीवन के वास्तविक रंगों को पहचानना और उन्हें निखारना आना चाहिए। जीवन में जो रंग उभरकर आ रहा है, केवल वही रंग स्थायी नहीं होता, बल्कि उस रंग के भीतर छिपे हुए अनेकों ऐसे रंग होते हैं, जो समय के साथ उभरते हैं। इसलिए समय के साथ होने वाले बदलावों को हमें स्वीकारना चाहिए और जीवन के रंगों का आनन्द लेना चाहिए। ❑

सामूहिक उपासना में बड़ी शक्ति है। एक समय पर एक मन से एकाग्र होकर की गई उपासना स्वर विज्ञान और शक्ति संचार के हिसाब से अद्भुत सामर्थ्य उत्पन्न करती है। इसलिए हम कहते रहते हैं कि गायत्री मंत्र एक साथ बोलिए। एक समय पर एक साथ एक क्रम से की हुई उपासना का वह फल होता है जैसे कि लोहे के बड़े पुलों पर से होकर जब कभी सिपाही चलते हैं तो कदम मिलाकर लेफ्ट-राइट करने से उन्हें मना कर दिया जाता है, क्योंकि उससे पुल टूटने का खतरा रहता है। आप लोग सामूहिक रूप से एक साथ, एक ही समय, एक-सी ध्वनि, एक ताल-लय, एक नाद का उपयोग कर सकें तो स्वर विद्युत का एक बहुत बड़ा आधार विनिर्मित होगा और वातावरण के संशोधन का प्रयोजन पूरा करेगा।

-परमपूज्य गुरुदेव

जीवन की उत्कृष्टता है ज्ञान

ज्ञान के बारे में समय-समाज-परिस्थितियाँ सबकी अलग दृष्टि रही है, लेकिन ये अवश्य रहा है कि जब से मनुष्य विकसित हुआ, जब से सभ्यता विकसित हुई, ज्ञान की महिमा को किसी न किसी ढंग से, किसी न किसी तरह से स्वीकारा जरूर गया है। मनुष्य की सभ्यता, मनुष्य की संस्कृति, मनुष्य का जीवन उसके ज्ञान की देन हैं। मनुष्य और पशु में अगर कोई मौलिक भेद है तो वह ज्ञान का भेद है, प्रश्न ये है कि ज्ञान है क्या?

ज्ञान विचार है, ज्ञान तर्क है, ज्ञान बुद्धि है, ज्ञान विश्लेषण है, ज्ञान अनुभूति है- प्रश्न उठता है कि आखिर क्या है ज्ञान? पश्चिम की ज्ञान के बारे में भिन्न दृष्टि है और पूरब की एक भिन्न सोच है। पश्चिम के जगत में ज्ञान को फिलोसॉफी कहा गया, फिलोसॉफी का ग्रीक वर्ड है- फिलोसॉफिया। इसका मतलब है- लव विद नॉलेज, ज्ञान के साथ प्रेम।

हमने ज्ञान को दर्शन कहा। दर्शन का मतलब है कि जो हमें देखना सिखाए, जो हमें दृष्टि दे, जो हमें अनुभव करना सिखाए। अनुभव करने की क्षमता को साइकोलॉजी में परसेप्शन या प्रत्यक्षण कहते हैं। परसेप्शन को अगर शाब्दिक अर्थ में देखा जाए तो यह दृष्टि से सम्बन्धित होता है, देखने से सबन्धित होता है, to perceive लेकिन हम इसको व्यापक अर्थों में, मनोवैज्ञानिक अर्थों में लेते हैं कि हम किस रूप में परिस्थितियों को, जीवन को अनुभव करते हैं, वातावरण को कैसे अनुभव करते हैं, तो यह कह सकते हैं कि परसेप्शन हमारी अनुभूति क्षमता है।

ज्ञान को पश्चिम में फिलोसॉफी, पूरब में दर्शन कहा गया पर ज्ञान वो नहीं है। ज्ञान को हम स्मृति से परिभाषित नहीं करते, जानकारियों से भी नहीं, विचारों से भी नहीं, तर्क से भी नहीं, बल्कि अनुभव से परिभाषित करते हैं। अनुभव की खास बात यह होती है कि अनुभव अपना स्वयं प्रमाण होता है। हमारा व्यक्तित्व हमारा जीवन वैसा होता है, जैसा कि हम अनुभव करते हैं। अनुभव के बिना हमारा जीवन नहीं होता। हम क्या बनते हैं, हमारा व्यक्तित्व क्या बनता है- वही बनाता है, जैसे हमें अनुभव मिलते हैं।

हमारी सोच, हमारा दृष्टिकोण कैसा होता है? हमारे अनुभव के अनुरूप होता है और हमारे अनुभव जितने सूक्ष्म, जितने व्यापक, जितने सकारात्मक हैं, हमारा जीवन उतना ही उत्कृष्ट होता है। अगर हम कहें कि ज्ञान क्या है? तो जीवन की उत्कृष्टता है। इसीलिए हमने समाज में, संसार में, देश में, विदेश में प्रत्येक सभ्यता, संस्कृति में ज्ञान को और ज्ञानी को बड़ा सम्मान दिया है, बड़ा आदर दिया है।

भारत में ऋषि परंपरा रही है, पश्चिम में भी ज्ञानी को हमने गुरु का स्थान दिया, आदर दिया और उस समाज को श्रेष्ठ समाज माना, जिसने ज्ञान की महिमा को स्वीकारा। हमने माना कि वो श्रेष्ठ समाज है, वो समाज अच्छा है। कौन सा? जिसमें ज्ञान की महिमा प्रतिष्ठित है। अभी भी चर्चा चल रही है- नॉलेज सोसाइटी की। प्लेटो ने कहा कि वो समाज अच्छा होगा, जहाँ ज्ञानी राजा बनेगा, जहाँ ज्ञानियों का शासन होगा। विश्वविजेता अभियान के लिए निकले सिकंदर ने अरस्तू को अपना गुरु माना था।

हमारे यहाँ भारत देश में प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों की, संतों की सराहना की गयी, क्यों? ज्ञान के कारण। भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान के संदर्भ में कुछ नए आयाम दिए हैं, इसमें ज्ञान के बारे में ऐसा कुछ कहा है, जो अन्य देशों ने, अन्य संस्कृतियों ने पहले कभी नहीं सोचा, जैसे- भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि ज्ञान कैसे मिलेगा? कैसे आप अनुभव प्राप्त कर सकेंगे?

इसके बारे में वे कहते हैं कि अनुभवीजनों की शरण में जाओ। पढ़ने से, पुस्तकों से, शब्दों से, स्मृतियों से वो बात आपको नहीं मिलेगी, जो जीवन जीने के लिए जरूरी है, उसके लिए आपको अनुभवीजनों के पास जाना पड़ेगा। तद्विद्धि प्रणिपातेन- भाव

भक्ति से, विनम्रता से दण्डवत प्रणाम करना पड़ेगा, क्योंकि ज्ञान केवल बुद्धि और तर्क का विषय नहीं है। पूरे प्रकरण में भगवान श्रीकृष्ण ने बौद्धिकता की या बुद्धि की या तर्क की या स्मृति की बात नहीं की, पहली बात कही कि ज्ञानी ही ज्ञान को संप्रेषित कर सकते हैं। इसलिए ज्ञान पाना है तो ज्ञानीजनों का संग करो, सत्संग करो।

हमारे यहाँ जितनी महिमा स्वाध्याय की है, उससे ज्यादा सत्संग की है। हम सीख सकते हैं ज्ञान को। फिर ज्ञान के बारे में एक विशेष बात बताते हैं कि ज्ञान के लिए श्रद्धा चाहिए। कैसे? श्रद्धा से क्या होगा? कहीं भी हम आज पढ़ने जाते हैं, या हम कहीं पढ़ते हैं, तो हम आई.क्यू. का मापन करते हैं कि विद्यार्थी की आई.क्यू. कितनी है, लेकिन भगवान यहाँ कहते हैं कि ज्ञान के लिए श्रद्धा-भाव चाहिए, बुद्धि से ज्यादा भाव महत्त्वपूर्ण है ज्ञान के लिए। क्यों? क्योंकि जिसके प्रति हमारे भाव सकारात्मक होते हैं, उसके प्रति हम ग्रहणशील होते हैं, उसे हम स्वीकार करते हैं।

सीखने की बात वहाँ कारगर होती है, जहाँ व्यक्ति ग्रहणशील होता है। ग्रहणशीलता न हो, तो बात नहीं बनती है। जब व्यक्ति ग्रहणशील होता है, तभी वह शिक्षा और चिकित्सा के क्षेत्र में आगे बढ़ पाता है। भाव हमें ग्रहणशील बनाते हैं। जिसके प्रति हम भावों से भरे हुए हैं, उसके प्रति हम ग्रहणशील हैं। हमें जो देगा, वो हम स्वीकार करेंगे।

भगवान ने भी भगवद्गीता का ज्ञान अर्जुन को तब देना शुरु किया, जब अर्जुन ने कहा कि शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्, अर्थात् 'प्रभु! मैं आपकी शरण में हूँ, आप मुझे बोध दो, आप मुझे रास्ता बताओ, आप मुझे मार्ग दो', तब ये बात बनी। शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। ज्ञान वो है, जो हमारी दृष्टि को हमारी सोच को, हमारे जीवन को संकीर्णता से उबारता है, हमें व्यापक बनाता है। कहते हैं कि राजा का देश तो अपना देश होता है। राजा जहाँ रहता है, वहाँ का देश अपना देश है। राजा चाहे तो अपने देश से किसी को भी देशनिकाला दे सकता है, वहाँ से निकाल सकता है, लेकिन ज्ञानी के लिए तो पूरा संसार अपना है।

भगवान कहते हैं कि यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहं, जिसको पाने से, जिसको जानने से तुहारा मोह खत्म हो जाएगा, तुहारे लिए सब कुछ अपना हो जाएगा। अपनेपन का विस्तार होता है, ज्ञान आपको सभी संकीर्णताओं से, सभी चीजों से उबारता है। एक अद्भुत ज्ञान की बात करते हैं भगवान श्रीकृष्ण, अपने इस प्रकरण में वो ज्ञान को एक नवीन आयाम देते हुए कहते हैं कि ज्ञान केवल बुद्धि का विषय नहीं है, ज्ञान भावों का भी विषय है। ज्ञान की साधना श्रद्धा से होती है, श्रद्धा हमें अनुभव के शिखर तक पहुँचाती है, तब हमारा ज्ञान व्यापक बनता है और यह ज्ञान हमें व्यापक बनाता है।

आज के जीवन में सबसे बड़ी बात है कि हमारा जीवन बहुत ही कलुषित हो गया है। भगवान कहते हैं कि जीवन को यदि पवित्र और प्रखर बनाना है, तो भी ज्ञान चाहिए। पवित्र, भावपूर्ण, विनम्र, सकारात्मक, सदाचारी जीवन की प्रत्येक उत्कृष्टता के लिए ज्ञान चाहिए। पश्चिम में कहते हैं कि ज्ञान आपको वहाँ होता है जहाँ आपको संशय है, जहाँ आपको प्रश्न हैं, जहाँ आपको संदेह है।

इससे संबंधित एक प्रसंग है- एक ग्रीक दार्शनिक हुआ है-पिरहो। पिरहो के साथ एक बार उसके गुरु कहीं जा रहे थे, तो वह रास्ते में एक गड्ढे में गिर गये। पिरहो उनके साथ में था, पिरहो ने सोचा कि हमें गुरु को उबारना चाहिए कि नहीं उबारना चाहिए क्योंकि गुरु ने हमें सिखाया है कि प्रत्येक कर्म को सोच-विचारकर करना चाहिए। हमारे लिए उचित है गुरु को गड्ढे से निकालना या इन्हें निकालना उचित नहीं है।

पिरहो सोचता रहा, गुरु कहता रहा कि हमें बचाओ-बचाओ भई, हम गड्ढे में, दलदल में फँस रहे हैं। पिरहो बोला- नहीं, हम आपकी सीख को पूरी तरह से काम में लाएँगे। हम आपको गड्ढे से बचाएँ कि नहीं बचाएँ। पिरहो खड़ा रहा, गुरु दलदल में डूबता रहा, तब तक दूसरे लोग आ गए, जिन्होंने गुरु को गड्ढे से निकाल लिया। भगवान कहते हैं कि सकारात्मकता के लिए, संवेदना के लिए संशय की आवश्यकता नहीं है, श्रद्धा की आवश्यकता है।

संशयात्मा विनश्यति, कहते हैं कि संशय होगा तो जीवन अंधेरों में चलता चला जाएगा। संशय की नहीं, श्रद्धा की

आवश्यकता है। इस तरह से भगवान हमें नई अनुभूति देते हैं ज्ञान के बारे में। नया प्रकाश देते हैं। नई दृष्टि देते हैं। हम ज्ञानी हो सके या नहीं, इसके बारे में कहते हैं कि हम संशयमुक्त हो सके, हम श्रद्धावान बन सके, हम पवित्र हो सके, हम मोहमुक्त हो सके, सभी को अपना बना सके- ऐसा हो सका, तो हम ज्ञानी हो सके। ये ही वो गुण हैं, जिनसे कि जीवन उत्कृष्टता को, उत्कर्ष को प्राप्त होता है। इससे जीवन का निरंतर उत्थान होता चला जाता है।

ज्ञान के बारे में वेद कहते हैं कि तमसो मा ज्योतिर्गमय, अर्थात् ज्ञान हमें अंधकार से निरंतर प्रकाश की ओर ले जाता है, मृत्योर्मा अमृतम्गमय, अर्थात् ज्ञान हमें मृत्यु से निरंतर अमृत की ओर ले जाता है। अमृत सकारात्मकता है, अमृत संवेदना है। यह नकारात्मक भाव नहीं है। जितना हम संवेदना की ओर बढ़ते हैं, उतना हम ज्ञान की ओर बढ़ते हैं, जितना हम पवित्रता की ओर बढ़ते हैं, उतना हम ज्ञान की ओर बढ़ते हैं, जितना हम श्रद्धा की ओर बढ़ते हैं, उतना हम ज्ञान की ओर बढ़ते हैं। जितना हम सबको अपना बनाने की ओर बढ़ते हैं, उतना हम ज्ञान की ओर बढ़ते हैं। स्मृति हो या हमारी तर्क क्षमता हो या कुछ और हो- ये हमारे ज्ञानी होने का प्रमाण नहीं हैं।

हम कबीर को लें या हम बुद्ध को लें- ये सब तार्किक नहीं थे, इनके पास कोई शास्त्रों का, स्मृति का भण्डार नहीं था, कबीर तो खुले आम घोषणा करते थे कि मसि कागद छुयो नहिं, कलम गह्यो नहिं हाथ, लेकिन इनके ज्ञानी होने में कोई संदेह नहीं था, क्योंकि इन्होंने जीवन को बड़ी सूक्ष्मता से पढ़ा था, इसके अनुभव प्राप्त किए थे, जीवन की एक-एक बात को बेहतर और भली प्रकार जानते थे। ज्ञान की महिमा में वो सब कुछ है, जो जीवन को सार्थक बना सकता है, उसे उत्कृष्ट बना सकता है और उत्कर्ष को हमारे जीवन में परिभाषित कर सकता है। ❑

इंग्लैंड के लंकाशायर नगर में एक ऐसा गिरिजाघर बनाने की बात सोची गई जो, विश्व भर में अद्वितीय हो। नगरपालिका के मेयर ने उसके लिए यथेष्ट धन दिया और गिरिजाघर बनने लगा। बहुत सुन्दर गिरिजाघर बनकर तैयार हो गया। दर्शक उसे देख कर वाह-वाह कर उठते थे।

दूर-दूर से भक्तगण दर्शनार्थ आने लगे। एक दिन नगरपालिका की बैठक बुलाई गई। यह प्रमाणित करना था कि वह गिरिजाघर विश्व के सब गिरिजाघरों से भव्य और सुन्दर है। सभा प्रारम्भ हुई, एक सदस्य ने उसे अनावश्यक लम्बा बताया। दूसरे ने चौड़ाई पर टीका की। किसी ने कहा- गिरिजाघर पूर्वी शैली पर होता, तो और सुन्दर होता। बहस बराबर चलती रही कोई सर्वसम्मत निष्कर्ष नहीं निकला। एक दिन ईशरवुड वहाँ पहुँचे और बोले- आप लोग इतने महीनों से वाद-विवाद में लगे हो, समय बर्बाद करते हो। तुमसे अच्छे तो ये भक्त ही हैं, जो जितना है उतने का ही आनन्द लूट रहे हैं।

श्रद्धाहीन बुद्धि स्थूल कमाल भले ही दिखा ले, श्रद्धायोग के बिना शान्ति, सन्तोष नहीं दे सकती- यह कहकर विद्वान ईशरवुड उस विवाद से हट गए। विवाद लबे समय तक चलता रहा और उसका कुछ समाधान न निकला। सत्य ये ही है कि शाश्वत समाधान का आधार तर्क व विवाद नहीं, आस्था व श्रद्धा बनते हैं।

युग गीता - 242

जिसे जानकर कृतकृत्य हो उठते हैं मनुष्य, उस ज्ञान का हुआ प्राकट्य

(श्रीमद्भगवद्गीता के पुरुषोत्तम योग नामक पन्द्रहवें अध्याय की उन्नीसवीं किश्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के पुरुषोत्तम योग नामक पंद्रहवें अध्याय के उन्नीसवें श्लोक की विवेचना, इससे पूर्व की किश्त में प्रस्तुत की गई थी। भगवान श्रीकृष्ण उस श्लोक में अर्जुन से कहते हैं कि-हे भरतवंशी अर्जुन! इस प्रकार जो मोहरहित मनुष्य मुझे पुरुषोत्तम रूप में जानता है, वह सर्वविद्भक्त सब प्रकार से मेरा ही भजन करता है। जब मनुष्य का मन क्षर से पार चला जाता है, जब उसका मन क्षर से उपर उठकर अक्षर में लग जाता है और जब वह परमात्मा को अक्षर से ही उत्तम जान लेता है, तब उसकी प्रत्येक गतिविधि, प्रत्येक क्रियाकलाप भगवान का भजन बन जाता है। ऐसा इसलिए क्योंकि उस स्थिति में उसकी दृष्टि में भगवान के पुरुषोत्तम रूप के अतिरिक्त अन्य कुछ लक्ष्य या उद्देश्य नहीं होता।

श्रीभगवान अपने ऐसे भक्त को सर्वविद्भक्त कहते हैं। उसे वे सर्वज्ञ कहते हैं, क्योंकि भगवान के एक ही स्वरूप को जानने वाला सर्वज्ञ कहाँ हो सकता है? सर्वज्ञ तो वस्तुतः वही हो सकता है जो भगवान के लौकिक तथा अलौकिक, दोनों ही स्वरूपों को भलीभाँति जानता हो। लौकिक के अंदर अलौकिक को जानने की क्षमता नहीं होती, परन्तु अलौकिक को जानने वाला लौकिक ज्ञान को स्वतः ही जान लेता है। भगवान के सगुण स्वरूप को जानने वाला, संभवतया भगवान के निर्गुण स्वरूप से अपरिचित हो और भगवान के निर्गुण स्वरूप को जानने वाला शायद भगवान के सगुण स्वरूप से अपरिचित हो परन्तु भगवान को समग्र रूप से जानने वाला, भगवान के दोनों ही स्वरूपों से परिचित होता है। यहाँ श्रीभगवान् इसी सत्य को कहते हैं कि इसी प्रकार जो भक्त, जो साधक मोहरहित होकर भगवान के पुरुषोत्तम रूप को जानता है, वही सर्वज्ञ है और उसकी सारी गतिविधियाँ भगवान के भजन का माध्यम बन जाती हैं।]

इतना कहने के बाद भगवान श्रीकृष्ण अपना अगला सूत्र कहते हैं कि-

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत॥20॥

शब्द विग्रह-इति, गुह्यतमम्, शास्त्रम्, इदम्, उक्तम्, मया, अनघ, एतत्, बुद्ध्वा, बुद्धिमान्, स्यात्, कृतकृत्यः, च, भारत॥20॥

शब्दार्थ-हे निष्पाप (अनघ), अर्जुन! (भारत), इस प्रकार (इति), यह (इदम्) अति रहस्ययुक्त गोपनीय (गुह्यतमम्), शास्त्र (शास्त्रम्), मेरे द्वारा (मया), कहा गया (उक्तम्), इसको (एतत्), तत्त्व से जानकर (मनुष्य) (बुद्ध्वा), ज्ञानवान् (बुद्धिमान्) और (च), कृतार्थ (कृतकृत्यः), हो जाता है (स्यात्)।

अर्थात् हे निष्पाप(अनघ) अर्जुन! इस प्रकार यह अत्यन्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया है। हे भरतवंशी अर्जुन! इसको जानकर मनुष्य ज्ञानवान तथा कृतकृत्य हो जाता है। भगवान का पुरुषोत्तम रूप निश्चित रूप से एक गुह्य ज्ञान ही है क्योंकि इसको जान पाना या पूरी तरह से समझ पाना हरेक के लिए संभव नहीं है, एवं जो इस स्वरूप को जान जाता है, वह सभी दृष्टि से ज्ञानवान तथा कृतकृत्य भी हो जाता है।

इसी के साथ ये भी सत्य है कि श्रीभगवान् के इस स्वरूप को जान पाने का अधिकार भी मात्र उसे ही है जो पापी न हो अर्थात् जिसका अन्तःकरण हर दृष्टि से शुद्ध तथा निर्मल हो। यह समझाते हुए ही वे अर्जुन को कहते हैं कि हे अनघ अर्थात् निष्पाप अर्जुन! तुम निर्मल अन्तःकरण के स्वामी होने के कारण ही इस गुह्यज्ञान को जानने के अधिकारी बने हो।

जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया हो, पाप उसमें शेष न रहे हों और वह लौकिक तथा अलौकिक दोनों ही ज्ञान के क्षेत्रों से ऊपर उठ गया हो और वह भगवान को पुरुषोत्तम रूप में जानता हो, तो वह सब कुछ जानने वाला यानि सर्वविद् बन जाता है। वह फिर आत्मस्वरूप को जानने वाला भी होता है और तत्त्वज्ञान को रखने वाला भी होता है, वह परमात्मचेतना को समग्रता से अनुभव करने वाला होता है तथा परमात्मा के पुरुषोत्तमस्वरूप का, क्षर तथा अक्षर दोनों ही स्वरूपों का सम्यक ज्ञान रखने वाला होता है।

इसे ऐसे समझें कि इस अस्तित्व की परिधि पर तो शरीर है, मध्य में अविनाशी चेतना है और अंत में केंद्र पर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अंतर्यामी, परमेश्वर, पुरुषोत्तम हैं-उसकी परिधि भी केंद्र का ही प्रतीक बन जाती है अर्थात् उसका शरीर व उसकी चेतना ये सभी परमात्मा के मंत्र व माध्यम बन जाते हैं फिर उसके शरीर के क्रियाकलाप, उसका चिंतन, उसकी भावनाएँ, उठना, बैठना, चलना, बोलना ये सभी पुरुषोत्तम का भजन बन जाते हैं।

श्रीभगवान उनके इस पुरुषोत्तमस्वरूप को समझने के कारण अर्जुन को निष्पाप कहते हैं। सच पूछा जाए, तो हमारा निष्पाप होना हमारा मूल स्वभाव है। जैसे ही व्यक्ति परमात्मा को समग्रता से समझाता है, वैसे ही उसका यह मूल निष्पाप स्वरूप जाग्रत हो उठता है। ऐसा व्यक्ति फिर परमात्मा के परमधाम का स्थायी निवासी बन जाता है। पुराणों में ऋषि मुद्गल की कथा इस संदर्भ में आती है। वे शिलोञ्छवृत्ति से अपना जीवन निर्वाह करते थे तथा मात्र अमावस्या तथा पूर्णिमा को अतिथि सत्कार करने के बाद, दान देने के बाद जो भोजन शेष रहता था, उसे ही ग्रहण करते थे।

एक बार महर्षि दुर्वासा उनकी परीक्षा लेने के उद्देश्य से उनके यहाँ उन्मुक्त का वेष बना कर पहुँचे और उनका सारा भोजन ग्रहण कर गए। उनके खाने के लिए कुछ शेष न रहा। ऐसा वे निरंतर तीन माह तक करते रहे और भूखे रहने के बाद भी महर्षि मुद्गल के मन में दुःख या क्रोध जैसा विकार न जन्मा।

महर्षि दुर्वासा उनके धैर्य को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे महर्षि मुद्गल से बोले-ऋषिवर! आपके समान तपस्वी तथा दाता इस संसार में दूसरा कोई नहीं है। भूख बड़े-बड़े लोगों के धैर्य को हर लेती है। आपके पुण्य के कारण आप सशरीर ब्रह्मलोक जाने के अधिकारी हैं। प्रत्युत्तर में महर्षि मुद्गल ने उनसे पूछा कि क्या ब्रह्मलोक में व्यक्ति सदा रह सकता है? उन्हें उत्तर मिला कि ब्रह्मलोकपर्यन्त सभी लोकों में पतन का भय जीव को सदैव बना रहता है। यह सुनकर महर्षि मुद्गल बोले-

यत्र गत्वा न शोचन्ति न व्यथन्ति चरन्ति वा।
तदहं स्थानमत्यन्तं मार्गयिष्यामि केवलम्॥

हे देव! मैं तो उस परम धाम को ही प्राप्त करूंगा, जिसे प्राप्त कर लेने पर शोक, व्यथा, दुखों की आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति होती है। वह परमानन्द, परमात्मा के उस पुरुषोत्तमस्वरूप को जानने के बाद ही मिलता है। भगवान कृष्ण, गीता के पंद्रहवें अध्याय के इस अंतिम श्लोक में उसी ओर इशारा करते हैं। इसी के साथ पुरुषोत्तम योग नामक इस पंद्रहवें अध्याय की समाप्ति होती है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥

❑

भारतीय संस्कृति का निर्देश है- 'हे मनुष्यो! अपने हृदय में विश्व प्रेम की ज्योति जला दो। सबसे सहयोग करो। भुजाएँ पसारकर प्राणिमात्र को अपने हृदय से लगा लो। विश्व के कण-कण को प्रेम की सरिता से सींच दो। विश्व प्रेम वह रहस्यमय दिव्य रस है, जो एक से दूसरे हृदय को चाहता है। हम सबका जीवन आदर्श एवं उद्देश्य के लिए ही होना चाहिए। जब तक जियो विश्व हित की समस्त वस्तुओं को अपने प्रेम की छाया में रखो। सबको आत्मभाव और आत्मदृष्टि से देखो। सब अपने हैं, इस विश्व में कोई पराया नहीं है।'

सुखी जीवन का आधार-भावनात्मक संतुलन

भावनात्मक परिपक्वता एक सफल-सुखी जीवन का आधार है। यदि व्यक्ति भावनात्मक रूप से विकसित नहीं है, तो वह परिवार हो या समाज, आपसी सबन्धों को सही ढंग से निभा नहीं पाता। जीवन के उतार-चढ़ाव के बीच वह भावनाओं के अतिरेक में बह जाता है और सही निर्णय लेने में प्रायः चूक जाता है। दैनिक जीवन में हम अपने विचार, व्यवहार एवं आचरण को अनुशासित रखते हुए अपने भावनात्मक संतुलन को साध सकते हैं। प्रस्तुत हैं कुछ ऐसे ही उपयोगी सूत्र।

1- समझें अपनी भावनाओं को, करें स्वयं को स्वीकार – पहला चरण अपनी भावनाओं की समझ रखना है। भाँति-भाँति के लोगों के बीच व्यवहार के दौरान हमारी भावनाओं का स्तर एवं स्वरूप क्या रहता है, उसको समझने का प्रयास करें। कहाँ पर हमारी भावनाऐं अनगढ़ हैं, कहाँ इनको लेकर हम असहज-असुरक्षित अनुभव करते हैं, कहाँ इनका दमन हो रहा है आदि। इनके मध्य अपनी यथार्थ स्थिति को स्वीकारें। इसी आत्मस्वीकृति के साथ परिवर्तन का शुभारभ होगा। हर व्यवहार एवं परिस्थिति के बीच हम अपने भाव एवं मनःस्थिति का अवलोकन करते हुए उत्तरोत्तर इनमें सुधार कर सकते हैं। भावनाओं पर क्रमशः नियंत्रण स्थापित करते हुए, इन्हें परिष्कृत एवं परिपक्व कर सकते हैं, लेकिन इनका शुभारभ स्वयं की स्वीकृति एवं समझ के साथ होगा।

2- दें भावनाओं को सकारात्मक अभिव्यक्ति–अपनी भावनाओं को समझकर हम उन्हें कागज पर उतारकर मन को हल्का कर सकते हैं, इन्हें वैचारिक स्पष्टता दे सकते हैं। अपने किसी विश्वसनीय मित्र या अविभावक के साथ साझा भी कर सकते हैं, जो हमें समझते हों। यह हमारी भावनाओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक होता है। यदि यह भी संभव न हो तो अपने इष्ट, आराध्य एवं गुरु के सामने अपना भावनिवेदन कर सकते हैं। ईमानदारी एवं आस्थापूर्वक किया गया यह प्रयोग अपना सकारात्मक प्रभाव डालता है और हम भावनात्मक रूप में अधिक सशक्त एवं संतुलित अनुभव करते हैं।

3- कार्य समयसाध्य है लेकिन धैर्य की अंतिम विजय सुनिश्चित–यदि हम अपनी स्थिति को तहेदिल से स्वीकार करते हैं, तो फिर अपनी भावनाओं के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण को बनाए रखने का कोई कारण नहीं रह जाता। हालाँकि दीर्घकाल तक पाली-पोसी गई नकारात्मकता को सकारात्मक बनाने में थोड़ा समय लग सकता है, लेकिन ईमानदार प्रयास अन्ततः फलित होते ही हैं। जीवन को अस्थिर-असंतुलित करने वाले नकारात्मक भावों की जड़ों तक पहुँच होते ही फिर इनके रूपांतरण की प्रक्रिया आरभ हो जाती है। इसके साथ इन पर न्यूनतम नियंत्रण की पहल सकारात्मक भाव का संचार करती है और जीवन की संभावनाओं के प्रति एक नया दृष्टिकोण पनपता है।

4- संवेदी श्रवण को बनाऐं जीवन का अंग–यह भावनात्मक विकास का एक सरल किंतु बहुत प्रभावी सूत्र है। जब हम किसी की बातों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं, तो यह प्रतिपक्ष के घावों पर मलहम का काम करता है। उस व्यक्ति में श्रोता के प्रति विश्वास पैदा होता है। इसके साथ श्रोता का भी भावनात्मक विकास होता है। प्रख्यात विचारक एवं लेखक स्टीफन कॉवे के शब्दों में संवेदी श्रवण के साथ इमोशनल बैंक अकाउंट समृद्ध होता है। इसके साथ व्यक्ति अधिक भावप्रवण बनता है और उसके व्यक्तित्व की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता में वृद्धि होती है। एक अच्छा चिकित्सक इसी आधार पर रोगी का विश्वास जीतता है और अपने उपचार को प्रभावशाली बना पाता है। यही भावनात्मक विकास के संदर्भ में किए जाने वाले प्रयास का भी सत्य है।

5- आत्मानुशासन, संयम-सदाचार—निस्संदेह संकीर्ण स्वार्थ एवं क्षुद्र अहंकार पर लगाम अनुशासन एवं तप की माँग करता है और साथ ही भावनात्मक विकास में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। इसी तरह संयम-सदाचार शारीरिक एवं व्यवहारिक स्तर पर व्यक्तित्व को सशक्त बनाते हैं। तप की भट्टी में चित्त का शोधन होता है, इसके जन्म-जन्मांतरों के कुसंस्कारों का प्रक्षालन होता है और भावनात्मक संतुलन एवं विकास का ठोस आधार तैयार होता है, जो निष्काम सेवा के साथ और गति पकड़ता है।

6- निष्काम सेवा—यह एक कटु सत्य है कि हमारे प्रायः हर कर्म किसी न किसी स्वार्थ से प्रेरित होते हैं और उनमें कहीं न कहीं अपने अहं की तुष्टि का भाव रहता है। भावनात्मक रूप से कंगाल व्यक्ति के मूल में निपट स्वार्थीपन एवं घोर अहंकार निहित होता है, जिस कारण वह मानसिक रूप से परेशान रहता है, लेकिन प्रायः वह अपनी इस स्थिति को समझ नहीं पा रहा होता है। अतः दिन में एक कार्य बिना किसी स्वार्थ के निष्काम भाव के साथ करने के साथ हम भावनात्मक विकास का एक छोर पकड़ते हैं और क्रमशः जैसे-जैसे सेवा जीवन का अंग बनने लगती है, हमारा भावनात्मक विकास भी गति पकड़ता जाता है।

7- लें प्रार्थना का सहारा, करें नियमित उपासना—भावनात्मक विकास चूंकि भाव, आस्था एवं हृदय क्षेत्र का कार्य है, अतः उपासना इसका एक प्रभावशाली उपाय रहता है। उपासना के पलों में हम भावनात्मक गहराइयों से अपने इष्ट-आराध्य से जुड़ने का प्रयास करते हैं। प्रार्थना के पलों में तो हम भावनाओं के शिखर पर होते हैं, क्योंकि तब हृदय के गहनतम क्षेत्र से पुकार उठ रही होती है। अपनी गहनता एवं परिपक्वता के साथ आध्यात्मिक संवाद के ये पल परमसत्ता के दिव्य संस्पर्श के साथ भावों के रूपांतरण के पल बन जाते हैं और व्यक्ति का भावनात्मक विकास गहनतम स्तर पर घटित होता है। भक्तों के जीवन की रूपाँतरण की चमत्कारिक कथा-गाथाएँ इसी आधार पर घटित होती हैं।

उपर्युक्त वर्णित सूत्रों को अपनाते हुए हम अपना भावनात्मक संतुलन एवं विकास साध सकते हैं। निश्चित रूप से यह एक समयसाध्य प्रक्रिया है, लेकिन यही आत्मविकास का राजमार्ग भी है।

❑

बुद्ध अपने प्रवास में एक बार वैशाली आये। उनके साथ दस हजार शिष्य भी थे। सभी शिष्य प्रतिदिन भिक्षा माँगने जाते थे। वैशाली में ही आम्रपाली का महल भी था। वह वैशाली की सबसे सुंदर स्त्री और नगरवधू थी। एक दिन उसके द्वार पर एक भिक्षु आया। उस भिक्षु को देखते ही वह उसके प्रेम में पड़ गयी। उसने भिक्षा देने के बाद कहा, तीन दिन बाद वर्षाकाल प्रारंभ होने वाला है। आप उस अवधि में महल में ही रहें। भिक्षु ने कहा कि तथागत मुझे अनुमति देंगे तो मैं रुक जाऊँगा। युवक भिक्षु ने बुद्ध को सारी बात बतायी। बुद्ध ने उसे कुछ पल देखा और आम्रपाली के महल में रहने की अनुमति दे दी। तीन दिन बाद युवक भिक्षु आम्रपाली के महल में चला गया। अन्य भिक्षु उस भिक्षु के संबंध में अनर्गल चर्चाएँ करने लगे। बुद्ध ने कहा—मुझे उस पर पूर्ण विश्वास है। वह चार माह उपरांत लौट आयेगा। सचमुच चार माह बाद भिक्षु लौट आया। पीछे-पीछे आम्रपाली भी आ गई। उसने बुद्ध से भिक्षुणी संघ में प्रवेश देने की आज्ञा माँगी। उसने कहा कि मैंने भिक्षु को पाने के हर संभव प्रयास किये पर मैं हार गयी। उसके आचरण ने बता दिया कि आपके चरणों में ही शांति व मुक्ति का मार्ग है।

स्वयं को सुनना ही श्रवण है

ज्ञान का सबसे बड़ा साधन श्रवण है। हमें ज्ञानरूपी इस ईश्वर को अपने भीतर सुनना चाहिए। इसे नहीं सुनने के कारण ही आज हमारा पतन हो रहा है। वेदों, पुराणों, इतिहासों के माध्यम से भगवान को सुनना चाहिए।

भगवान ने गीता में कहा है—

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठति अकर्मकृत्।

अर्थात् - कोई भी व्यक्ति क्षण भर के लिए भी कर्म से रहित होकर नहीं रह सकता। शरीर है तो क्रिया करनी ही पड़ेगी। बैठना भी क्रिया है, सोना भी क्रिया है, सांस लेना भी क्रिया है- शरीर में तमाम नाड़ियाँ भी इसी तरह कुछ न कुछ कर रही हैं। लगता तो है कि कुछ नहीं कर रहीं, लेकिन वे सतत क्रियाशील हैं। क्रिया के बिना कोई जीवन ही नहीं है। हमारे ऋषियों, विद्वानों एवं मनीषियों ने इस क्रिया का परिष्कार किया है।

जिन लोगों ने परिमार्जित और संयमित जीवन व्यतीत किया, मनमानी नहीं की, वे ही जीवन को सफल बना पाए। उनका जीवन बहुत व्यवस्थित रहा। प्रह्लाद के लिए तो सारा वातावरण ही विपरीत था। पिता हिरण्यकशिपु में आसुरी भाव की पराकाष्ठा थी। शास्त्रों में कोई विश्वास नहीं, परलोक में, परंपरा में, पुण्य में, ऋषियों, संतों के जीवन में कोई विश्वास नहीं था। हर माता-पिता का मन होता है कि उनके बच्चे शिक्षित हों, किंतु हिरण्यकशिपु उस शिक्षा को शिक्षा ही नहीं मानता था, जिसमें ईश्वर का अस्तित्व हो जबकि इस सृष्टि की परिकल्पना, मान्यता या चिंतन इसके साथ संबद्धता से है। जीवन का उत्कर्ष तब तक संभव नहीं है, जब तक यह भाव न रहे कि सृष्टि किसी मनुष्य की रचना नहीं है। किसी शासन की, किसी धनपति की, किसी कलाकार शिरोमणि की नहीं है, किसी की नहीं है। सृष्टि की रचना किसी और ने की है।

धर्म परंपरा में पुनर्जन्म पर विश्वास किया जाता है। दुनिया की तमाम परंपराएँ, संप्रदाय, पंथ और लोग पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। बड़ी लंबी विवेचना है इस संबंध में। प्रह्लाद कहते हैं कि ईश्वर के बिना कैसा संसार। हम तमाम लोगों को सुनते, देखते हैं, उनके लिए काम करते हैं, विषयों का स्मरण करते हैं, चिंतन और निश्चय करते हैं, अहंकार करते हैं; किंतु इन सभी का मुख्य व्यवहार ईश्वर है। हम सुनेंगे, तो ईश्वर को सुनेंगे। हम देखेंगे, तो ईश्वर को देखेंगे। वेदों में लिखा है-'आत्मा वा रे द्रष्टव्य' यानी आत्मा का ही दर्शन करो। देखो उसी को, वही देखने योग्य है, उसका साक्षात्कार करो, उसकी अनुभूति करो। जो ज्ञान की अनुभूति का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप है, वही है देखने योग्य, उसको देखो। प्रह्लाद ने कहा कि आत्मा ही देखने योग्य है। मन कैसा है, क्रिया कैसी है, तुम्हारी इच्छाऐं कैसी हैं, संकल्प कैसे हैं- उनको भी देखना है। प्रह्लाद ने कहा —'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः' अर्थात् हमें सुनना भी उसी को है, जो वेदों ने कहा है।

ईश्वर को यदि जानना है तो ज्ञान का सबसे प्रथम साधन श्रवण है और इसमें ईश्वर को अपने भीतर सुनना चाहिए। उसे वेद, पुराण और शास्त्रों के माध्यम से सुनना चाहिए। जब हम ईश्वर को सुनेंगे, तो कहाँ से सुनेंगे, किससे सुनेंगे। संसार में अनेक धर्मों की परंपराऐं खड़ी हो गई हैं- जिनके बारे में कहा जाता है कि सब बराबर हैं। हमें ऐसा नहीं मानना है कि ईश्वर के लिए किसी को भी सुनें। हमें उस ईश्वर को जानना है, जिसमें हमारा अस्तित्व समाहित है। कई बार अपने स्वजनों से भी महीनों बातचीत नहीं होती है, किंतु मन में स्मरण रहता है, अपनत्व रहता है, तो लगता ही नहीं है कि कितने दिन बीत गए और बात ही नहीं हुई।

स्मरण का अर्थ है—अनुभव। अनुभव होगा, तो संस्कार उत्पन्न होंगे, उन्हीं संस्कारों से ईश्वर की प्राप्ति होगी। प्रह्लाद ने कहा कि अपने आपको ईश्वर को समर्पित करें। वाणी, आँखें, मन, हाथ-पैर, रोम-रोम और साँस-साँस भगवान के लिए समर्पित है और यही श्रेष्ठ जीवन है। जीवन में सर्वश्रेष्ठ व्यवहार का जो स्वरूप है, वह यही है कि हम स्वयं को ईश्वर के प्रति समर्पित करें। ईश्वर हमारे अन्दर है, हम स्वयं उसके अंश हैं। अंश और अंशी के सम्बन्धों के स्वर को सुनना ही श्रवण है। ❑

परम पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी-4

आध्यात्मिकता के मूल सिद्धान्त

[समापन किश्त]

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परम पूज्य गुरुदेव अपने इस प्रस्तुत उद्‍बोधन में समस्त श्रोताओं को आध्यात्मिकता के मूल एवं वास्तविक सिद्धान्त से परिचित कराते हैं। वे कहते हैं कि आध्यात्मिकता का अर्थ इस आधार पर निकल करके आता है कि हम अपने दृष्टिकोण को परिवर्तित कर पाने में सक्षम हो पाए अथवा नहीं? वे कहते हैं कि आध्यात्मिकता सही अर्थों में तभी आ पाती है, जब व्यक्ति सामाजिक उत्थान, लोककल्याण और दूसरों के विकास में अपने जीवन को लगा देने में संकोच नहीं करता है। वे जापान के गांधी कागावा से लेकर स्वयं अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हुए यह बताते हैं कि आध्यात्मिकता का मूल आधार समाज की सेवा और दूसरों का कल्याण है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

अंतरंग के कपाट खोलने वाले गुरु—

मित्रो! राजा परीक्षित के जी में आया कि मुझे किसी ऐसे आदमी से कथा सुननी चाहिए, ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, जिसका दीपक स्वयं जला हुआ हो। जिसका दीपक जला होगा, वही दूसरों को रोशनी दे सकता है। पता किया तो ध्यान में आया कि शुकदेव जी ही ऐसे व्यक्ति हैं कि जिनको बुलाया जाय और —उनके द्वारा भागवत की कथा सुनी जाय। बस एक दिन समाप्त हो गया परीक्षित को श्राप लगे हुए। एक दिन इस तैयारी में लगा रहा कि मुझको अब क्या करना चाहिए? शुकदेव जी के पास खबर भेजी। स्वयं कथा सुनने का निश्चय किया। सामान मँगाकर तैयारी की। सात दिन में से दो दिन बीत गये और एक दिन यह तैयारी करनी थी कि मुझे मरना है सो काठी, कफन, लकड़ी, घी आदि की व्यवस्था का एक दिन रखा। शेष दिनों में उन्होंने भागवत कथा का सांराश सुना।

मित्रों! मेरे जीवन में भी महत्त्वपूर्ण चार दिन कई बार बदल-बदल कर सामने आये। पहली बार मेरा गुरु जब मेरे पास आया और मेरे अंतरंग के कपाट खोल दिये। चार दिन की मेरे जीवन की अभूतपूर्व घटना, जिसको मैं सदैव याद रखूँगा, कभी भुला नहीं सकूँगा। क्यों? क्योंकि उसने मेरे जीवन का कायाकल्प कर दिया। बूढ़े आदमी को जवान बना दिया। मरे हुए को जिंदा कर दिया। मरा हुआ आदमी था और गुरु का अमृत पी करके जिंदा हो गया। चार दिन के लिए मुझे दुबारा जाना पड़ा। आज से दस साल पहले मैं गुरु के पास चला गया हिमालय पर, जहाँ मेरे गुरुदेव रहते हैं। वहाँ मैं रहा। चार दिन का अमृत मैंने एक बार पिया और चार दिन का अमृत मैंने दुबारा पिया। दो बार अमृत पी करके मैं निहाल हो गया। अब मैं न जाने कहाँ जा रहा हूँ और न जाने क्या करने जा रहा हूँ? वह अमृत जो मैंने चार दिनों में पहली बार पिया था और वह अमृत जो चार दिन में दोबारा पिया था। एक चालीस वर्ष पूर्व और एक दस वर्ष पूर्व। ये दोनों सौभाग्य के दिन हैं, जिनको मैं याद करता रहूँगा, कभी भुला नहीं सकूँगा।

मित्रो! आज भी हम अपना जन्मदिन मनाते हैं कि हम 21 नवंबर को पैदा हुए थे। हम खुशियाँ मनाते हैं, मिठाई खिलाते हैं और गीत गाते हैं। लोगों को दावत देते हैं और कहते हैं कि आज हमारा 28 वाँ जन्मदिन है। आज से अट्‍ठाइस वर्ष पूर्व हम 21 नवंबर को पैदा हुए थे। आइये गाना गाएँ, खुशी मनाएँ। लेकिन मित्रो! मेरे जीवन का सबसे खुशी का दिन वह है, जब मैं छोटा-सा नगण्य इनसान भगवान की तरफ चलने के लिए, जो राह मिलनी चाहिए, उस रास्ते पर चला गया। चार दिन मेरे जीवन के वे सौभाग्य के दिन हैं जब चार दिन मैं अपने गुरुदेव के पास रहा और ज्ञान का अमृत पी करके आया कि मैं मरा हुआ इनसान जिंदा हो गया। चार दिन दूसरी घटना की पुनरावृत्ति के दिन, जिसमें कि मैंने आपको बुलाया।

ये ठीक उसी तरह के दिन हैं, जैसे कि परीक्षित के जीवन में घटित हुए। मेरे जीवन में घटित हुए। मेरे गुरु ने अपनी वाणी का अमृत, अपनी आत्मा का रस निचोड़ करके मुझे पिलाया और मैं चाहता हूँ कि मैं भी अपनी आत्मा का रस निचोड़ करके आपको पिला दूँ। यह शिविर आपके जीवन में भी ऐतिहासिक घटना बनकर

रहे कि हम आचार्य जी के पास गये थे। उन्होंने हमसे कुछ कहा था।

अंतरात्मा से निकले कीमती वचन—

मित्रो! मैं व्याख्यान करने वाला हूँ क्या? नहीं। अब व्याख्यान पर से मेरी श्रद्धा कम हो गयी है। अब मैं व्याख्यानों पर यकीन नहीं करता। क्यों? क्योंकि मैं देखता हूँ कि रोज व्याख्यान होते हैं। रोज कथाएँ होती हैं। रोज रामायण सुनी जाती है। रोज गीता सम्मेलन होते हैं। रोज भागवत की कथाएँ होती हैं। गीता सम्मेलनों के बाद में, एक गीता सम्मेलन से एक अर्जुन निकल करके खड़ा हो गया होता, तो रोज होने वाले गीता सम्मेलन में से, एक गाँव में से एक-एक अर्जुन निकला होता तो अब तक 10-20 हजार अर्जुन निकलते और जो गीता की कथा हर साल होती हुई चली जाती है, उनमें से, लाख दो लाख अर्जुन सामने आ गये होते और अर्जुन की तरह काम करने लग गये होते।

इसीलिए व्यायानों पर से मेरा यकीन कम हो गया है। बहुत से ऐसे बेकार आदमी हैं, जिनको कहने का और कुछ सुनाने का हक नहीं है। लेकिन वे कहने और सुनाने की आदत अपने धंधे के रूप में, अपनी तारीफ के रूप में इस्तेमाल करने लगे हैं। वे दुनिया का कोई फायदा नहीं कर रहे हैं, बल्कि दुनिया का समय और बर्बाद कर रहे हैं।

मित्रो! अब मेरा लेखों पर से भी यकीन कम होता जा रहा है। पुराने जमाने में एक बात थी, जब ऋषि ने जो बात लिखी, लोगों ने कहा कि शास्त्रों में लिखा हुआ है। बस बात खत्म हो गयी। शास्त्रों में लिखा है, तो शास्त्रों को क्यों नहीं मानेंगे? "तस्मात् शास्त्रम् प्रमाणम्"। तेरे लिए शास्त्र प्रमाण है, ऋषि ने लिख दिया, आप्तपुरुष ने लिख दिया। महापुरुष ने लिख दिया और इस जिमेदारी के साथ में लिख दिया कि मेरा वचन और मेरी वाणी लाखों-करोड़ों मनुष्यों के जीवन को प्रभावित कर सकती है।

इसलिए मुझे बहुत बड़ी जिमेदारी के साथ कलम उठानी चाहिए। जिनके ऊपर यह उत्तरदायित्व था, वे आदमी एक-एक अक्षर लिखते हुए काँपते जाते थे और भगवान को पुकारते थे कि- प्रभु! मेरी कलम से कोई ऐसा शब्द न लिखा जाय, जिसके द्वारा जनता का कोई अहित होता हो, या जनता गुमराह होती हो, पर आज हमारा लिखने का धंधा है। हम तो पेशेवर लोग हैं, आप चाहे जो लिखवा लीजिए। अभी सिंडीकेट के पक्ष में लिखवा दीजिए, अभी हम सिंडीकेट के पक्ष में लिखेंगे। अभी आप जनसंघ के पक्ष में लेख लिखवा लीजिए और अभी आप चाहें तो जनसंघ के खिलाफ ऐसा लेख लिख दें कि जनसंघ वालों को नानी याद आ जाये। हमारा यह धंधा है। इसीलिए धंधे के रूप में आदमी ने लिखना शुरू कर दिया और धंधे के रूप में आदमी ने बोलना शुरू कर दिया। इसलिए मेरा यकीन अब लिखने और बोलने पर से हटता जाता है।

मित्रो! मैंने यहाँ आपको बोलने के लिए, आपका मनोरंजन करने के लिए नहीं बुलाया है। मैंने इसलिए बुलाया है कि अपनी जुबान के द्वारा ही नहीं, अपितु अपनी अंतरात्मा के द्वारा कुछ कीमती बातें आपसे कहूँ। और अपने जीवन का रस और निचोड़ और जो मेरे जीवन का निष्कर्ष है, जिस आधार पर मैं छोटा-सा व्यक्ति फलता-फूलता चला गया और एक छोटे से देहात में पैदा हुआ व्यक्ति अंतर्राष्ट्रीय फेम का व्यक्ति बन गया। अब मैं केवल भारत का ही नागरिक नहीं हूँ। सारा विश्व इस इंतजार में बैठा हुआ है कि नयी फिज़ाँ, नयी दिशा, नयी रोशनी, नया जमाना, नया युग और नयी व्यवस्थाएँ लाने के लिए, मार्गदर्शन करने वाला कौन आदमी है, जो दुनिया को नया रास्ता दिखायेगा?

मित्रो! अब हमारी उन आदमियों में से गणना की जाती है। अभी आपने मार्च की अखण्ड ज्योति में से एण्डरसन की भविष्यवाणी पढ़ी होगी। वह व्यक्ति जो न मुझे जानता है और न मेरी जान-पहचान है, न ही मेरी कभी उनसे मुलाकात हुई है। न मैंने उन्हें देखा है। न मेरी कोई चिट्ठी-पत्री का संपर्क है। फिर भी उसने अपनी आध्यात्मिकता के सहारे एक भविष्यवाणी की है। उन्होंने कहा है—"नयी दुनिया को बनाने वाला एक मसीहा पैदा हुआ है। वह हिंदुस्तान में है और अपना काम करने में लगा हुआ है।"

आध्यात्मिकता का जादू—

यह किसकी तरफ इशारा है? यह मैं आप पर छोड़ देता हूँ। यह आध्यात्मिकता का मंत्र और आध्यात्मिकता का जादू है।

जिसके कारण मैं शक्तियाँ और ताकत प्राप्त करता चला जाता हूँ। न केवल मैंने अपनी व्यक्तिगत समस्याएँ हल कर लीं, न केवल अपने समाज को मैंने प्रकाश दिया, न केवल मैं हिंदुस्तान का पुनर्निर्माण करने में जी जान से लगा हूँ, बल्कि दुनियावालों को भी यह उम्मीद दिलाता हूँ कि मैं आपको रास्ता बताऊँगा और अशांति की आग में जलते हुए लोग! मैं तुम्हें ठीक-ठिकाने पर ले जाकर के पहुँचा दूँगा। बहुत ताकतवर और मैं बहुत बड़ा आदमी हूँ।

मित्रो! ताकतवर और बड़प्पन की जो निशानियाँ मैंने पायीं, इसके जो चिह्न मैंने पाये, वे कहाँ से पाये? मैं चाहता हूँ कि इन चार दिन के शिविरों में वह आपको सिखाकर के जाऊँ और आप यहाँ सीख करके जाएँ। ये बहुत कीमती दिन हैं आपके। मैंने आपको बहुत ही आग्रह और इच्छा से बुलाया है। आप नहीं जानते, आपके और मेरे संबंध क्या हैं? आप मेरे साथ अनेक जन्मों से जुड़े हुए हैं।

मैं अपनी बात कह सकता हूँ कि मैं किस-किस जन्म में आपका क्या रहा हूँ? आप पहले जन्म में कौन थे और क्या-क्या महान कार्य करने में समर्थ हो चुके थे? आप अपने को भूल गये हैं। आप नहीं जान सकते। क्यों? क्योंकि आपके ऊपर अज्ञान के आवरण इतने ज्यादा छा गये हैं, जो आपकी दूर की दृष्टि को रोकते हैं। आप दूर की बात नहीं देख सकते, लेकिन मैं दूर की बात देखता हूँ। मैं आपको पहचानता हूँ, इसीलिए आपके साथ मेरे संबंध उसी तरीके से बने हुए हैं, जैसे कि पहले जन्मों में थे।

इसलिए जब मैं चलने लगा, जब मैं विदा होने लगा, तो मेरा जी आया कि मेरे पास जो गौरव की गठरी है, उसे अपने मित्रों और कुटुंबियों को बाँट दूँ। उनके ऊपर बिखेर दूँ। इसलिए मैंने यह शिविर बुलाया और आपको इसको तबीयत के साथ सुनना चाहिए। जैसे रामायण की कथा होती रहती है और महिलायें खरबूजे के बीज छीलती रहती हैं और स्वेटर बुनती रहती हैं और आपस में बातें भी करती रहती हैं। रामायण वाले रामचंद्र जी की बात कह रहे हैं। वे अपने गोरखधंधे में लगे हैं और वे अपने गोरखधंधे में लगी हैं। आप भी अगर इसी तरीके से सुनेंगे, तो मुझे बहुत दुःख होगा। अब अंतिम दिन मैं अपने सारे-के-सारे निष्कर्ष बताने वाला हूँ।

मित्रो! रावण मरने लगा, तो रामचंद्र जी ने कहा— लक्ष्मण, रावण मारा तो गया, लेकिन एक बड़ी दुर्घटना हो गयी। क्या दुर्घटना हो गयी? एक बहुत बड़ा व्यक्तित्व दुनिया में आया

एक वृद्ध से बादशाह नौशेरवाँ ने पूछा- 'आपकी उम्र कितनी है?' उसने कहा- 'पाँच वर्ष।' इस पर आश्चर्य से उसने फिर पूछा- 'सो कैसे?'

वृद्ध ने कहा- 'इतनी उम्र तो नर-पशुओं की तरह दिन गुजारने में बीत गई। अब पाँच वर्ष से जीवन-साधना में प्रवृत्त हुआ हूँ और मनुष्य जन्म सार्थक होते अनुभव किया है। इसलिए मेरी उम्र मनुष्य योनि में पाँच वर्ष ही हुई है।' नौशेरवाँ का समाधान हो गया। वस्तुतः आयु उतनी ही सार्थक है, जितने में कुछ करने योग्य बन पड़ा।

और चला गया। वह भटक तो गया, गुमराह तो हो गया, कि उसे कहाँ चलना चाहिए था? लेकिन उसने एक मन्नत जरूर पूरी की कि व्यक्ति के भीतर जो शक्तियाँ दबी पड़ी हैं, उन सारी शक्तियों को जगाने के लिए, बढ़ाने के लिए उसने एक मंजिल पूरी कर ली।

हर इनसान, छोटा-से-छोटा इनसान अगर चाहे तो अपने भीतर की दबी हुई ताकत और दबी हुई कुव्वत और दबी हुई शक्ति को आसानी से उभार सकता है, उठा सकता है। आदमी भूल जाय तो बात अलग है। रावण ने एक मंजिल पूरी की। उसने अपनी आत्मा के स्वरूप को समझा। आत्मा के स्वरूप को समझकर के उसने अपनी शक्ति, अपना स्वरूप, अपना वर्चस्व जान लिया। उसको बढ़ाने के लिए खुद ही हिम्मत की और वे चीजें बढ़ती हुई चली गयीं।

रावण धनवान था। उसकी सारी-की-सारी लंका सोने से बनाई हुई थी। बहुत मालदार आदमी था। बहुत ताकतवर और बलवान आदमी था। चला गया, देवताओं को पकड़ लाया। रावण बड़ा विद्वान था। वेदों के अनुवाद करने के लिए खड़ा हो गया, तो वेदों का अनुवाद कर डाला। साइंस को निकालने के लिए खड़ा हो गया, तो साइंस को निकाल लाया। रावण आधे हिस्से तक अध्यात्मवादी था। अगर व्यक्ति अपना स्वरूप, अपनी क्षमता, अपनी शक्तियों के बारे में जान ले और उनका विकास करने के लिए खड़ा हो जाय, तो मैं उसको आधा अध्यात्मवादी कहूँगा।

कुछ भी नहीं है नामुमकिन—

मित्रो! शेंडो एक दुबला-पतला छोकरा था और बीमार रहता था। 11-12 वर्ष का हो गया। उसको जुकाम, खाँसी लगी रहती थी। लीवर बढ़ा हुआ था। बाप के साथ एक बार जूडस का अजायबघर देखने के लिए गया। उसने जूडस का अजायबघर देखा और पिता से पूछा कि हमारे सामने ये जो मूर्तियाँ रखी हुई हैं, क्या इनकी शक्लें ऐसी ही थीं? क्या उनकी कलाइयाँ ऐसी मोटी थीं। उनने कहा—हाँ बेटा! ऐसी ही थीं क्या हमारे बुजुर्गों की गर्दन ऐसी मोटी थी? उनने कहा—हाँ! ऐसी ही मोटी थी। क्या हमारे बुजुर्गों की पेशानी और सीने ऐसे ही जबरदस्त थे? उन्होंने कहा—हाँ बेटा, ऐसे ही थे। ये लकड़ी नहीं है। ये जस के तस ऐसे ही बनाये गये हैं, जैसे कि हमारे बुजुर्ग थे।

शेंडो ने पूछा—पिताजी! क्या मैं भी ऐसा बन सकता हूँ? पिता ने कहा—हाँ! तू भी ऐसा बन सकता है। जो काम दुनिया का कोई एक इनसान कर सका, वह दूसरा भी कर सकता है। जो रास्ता एक के लिए खुला हुआ है, वह दूसरे आदमी के लिए भी खुला हुआ है। एक आदमी ने बी०ए० पास कर लिया, तो दूसरा आदमी भी अगर चाहे तो बी०ए० पास कर सकता है। समय ज्यादा लग जाय या कम, यह नहीं कह सकता, लेकिन एक आदमी ने जो काम कर लिया है, वह दूसरे आदमी के लिए नामुमकिन नहीं है।

मित्रो! शेंडो ने कहा—अगर यह नामुमकिन नहीं है, तो मैं भी ऐसा पहलवान बन सकता हूँ। पिता ने कहा—हाँ बेटा। अगर हर आदमी चाहे तो ठीक रास्ते पर चलकर अपनी मंजिल पा सकता है। छोटे-से-छोटा व्यक्ति भी महान कार्य कर सकता है। शेंडो जैसे ही म्यूजियम से घर आया, पिता से पूछा—मुझे बताइये कि मैं कैसे पहलवान, बलवान बन सकता हूँ? बचपन से बीमार, दमा, जुकाम, खाँसी से परेशान, लीवर जिसका बढ़ा हुआ, पर जब उसके पिता ने उसे खानपान का नियम, कसरत के गुण, विचारों को संयमित कैसे करें- ये सब बतलाया, तो शेंडो उसी तरह से काम करने लगा और शेंडो पहलवान बन गया।

मित्रो! आपको शायद हिस्ट्री मालूम नहीं है। हिंदुस्तान में राममूर्ति का नाम लिया जाता है। गामा पहलवान का नाम लिया जाता है। आजकल चंदगीराम का नाम लिया जाता है। कई पहलवान हिंदुस्तान में बड़े मशहूर रहे हैं और योरोप में एक बहुत बड़ा पहलवान हुआ है। उसका नाम था—शेंडो। वह अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का पहलवान था। क्योंकि उसने अपने अंदर दबी हुई सामर्थ्य, शक्तियों के बारे में समझा और सही ढंग से इस्तेमाल किया और बहुत बड़ा हो गया। रावण एक तरह का शेंडो था। उसने अपने भीतर की सामर्थ्य को समझा। अपने दिमाग की कीमत को समझा।

जो चाहे वो बन सकते हैं हम—

दिमाग को अगर विकसित किया जाय, तो आदमी कितना बड़ा विद्वान बन सकता है। यह बात अगर आपको जाननी

हो, तो विनोबा भावे से पूछिये। विनोबा भावे सारे जीवन सेवाकार्यों में लगे रहे, लेकिन उन्होंने एक इरादा किया हुआ है कि मैं दुनिया का अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति हूँ, इसलिए दुनिया की हर भाषा को सीख करके रहूँगा। उन्होंने प्रत्येक भाषा को सीखने की कोशिश की और एक घंटा इसके लिए मुकर्रर रखा। उन्होंने बहुत समय से इसके लिए एक घंटा अलग रखा है कि विश्व की मुख्य भाषाओं को सीखूँ।

मित्रो! उनको 23 भाषाएँ आती हैं, चौबीसवीं भाषा चायनीज भाषा, जो सबसे मुश्किल भाषा है, उसे अब सीखने में लगे हुए हैं। 84 वर्ष का व्यक्ति 24 वीं भाषा जो दुनिया की मुय भाषाओं में एक है, सीख रहे हैं। एक घंटे की कीमत, आदमी के दिमाग की कीमत कितनी होती है? आदमी के दिमाग की कोई भी तुलना नहीं कर सकता। आदमी के शरीर की शक्ति की तुलना कोई भी नहीं कर सकता और आदमी की आत्मा की तुलना कोई भी नहीं कर सकता और आत्मा की उपाधि की तुलना कोई भी नहीं कर सकता।

मित्रो! रावण उसी तरह का आदमी था। जब वह मरने लगा, तो रामचंद्र जी ने कहा—लक्ष्मण! यह गुमराह आदमी था। आधी मंजिल इसने पार कर ली और आधी भूल गया। आत्मा के स्वरूप को तो समझा, लेकिन परमात्मा के स्वरूप को नहीं समझा। आत्मा को परमात्मा के साथ इसने अगर जोड़ा होता, तो रावण विश्व का न जाने कौन रहा होता? व्यास जी, वसिष्ठ जी, याज्ञवल्क्य आदि इससे पीछे रह गये होते। अत्रि ऋषि भी इससे पीछे रह गये होते।

भले आदमी को जरा-सी बात अगर समझ में आ जाती कि आत्मा, परमात्मा से मिलाये जाने के लिए है, तो इसने सारी-की-सारी दिशाएँ बदल दी होती और इसके पास जो अकल थी, जो कुव्वत थी, जो पैसा था, वह सारे-का-सारा अगर इन कामों में खर्च कर डाला होता, जिन कामों में भक्तजन खर्च किया करते हैं, तो मजा आ जाता। दुनिया के राम पीछे रह जाते और रावण आगे निकल जाता और कंस आगे निकल जाता, कृष्ण पीछे रह जाते।

लक्ष्मण-रावण की विलक्षण भेंट—

मित्रो! रामचंद्र जी ने लक्ष्मण जी से कहा—बड़ी दुर्घटना हो गयी। हम इससे कुछ सीख नहीं पाये। लक्ष्मण जी ने पूछा—तो अब क्या करना चाहिए? उन्होंने कहा—थोड़ा-सा लक्ष्य बाकी है—लक्ष्मण। तुम उसके पास जाओ और यह पूछो कि हमको भौतिक जीवन में उन्नति कैसे करनी चाहिए? भौतिक जीवन की उन्नति करने के लिए हमारा आध्यात्मिक स्तर क्या योगदान कर सकता है? यह बहुत बड़ी बात है। लोग-बाग भौतिक जीवन में उन्नति करने के लिए दूसरी चीजों का सहारा लिया करते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि हमको अपने भीतर ऐसा गुबार, ऐसी कुव्वत जो भरी पड़ी है, अगर हम उसको उभार सकते हों, उसको हम बढ़ा सकते हों, तो सारी-की-सारी नियामतें, विभूतियाँ, जो हम बाहर से चाहते हैं, वे हमारे भीतर से अपने आप हमें मिल सकती हैं। न जाने लोगों को क्यों ख्याल है कि सब चीजें बाहर हैं और बाहर की चीजों से हम अपना फायदा उठा सकते हैं।

मित्रो! बाहर कोई भी चीज नहीं है। बाहर मिट्टी और धूल है। जो कुछ भी आदमी के भीतर है, वही मैगनेट है, वही चुंबक है, जिससे लोहे के छोटे-छोटे कणों को हम खींचते चले जाते हैं। मैगनेट का टुकड़ा अगर हमारे पास होता है और लोहे के दाने, लोहे के कण, लोहे का चूरा, लोहे की छड़ें जहाँ-तहाँ पड़ी रहती हैं। हम उस चुंबक को घुमा देते हैं, तो सारी-की-सारी लौह धातु की चीजें खिंचती हुई चली आती हैं और चुंबक से चिपक जाती हैं।

अगर हमारा चुंबक खराब हो जाय और उसकी चुंबकीय शक्ति खतम हो जाय तो फिर हम चुंबक को यहाँ-वहाँ लेकर के घुमाएँ, तो उससे कोई भी चीज चिपकती नहीं है। कोई भी लोहे का टुकड़ा उसके पास नहीं आता। दुनिया की दौलतें, दुनिया की संपदाएँ, दुनिया की समृद्धियाँ, दुनिया की सुविधाएँ केवल लोहे के बुरादे, लोहे के कणों के तरीके से हैं। जो हमेशा से आती हैं और आती रहेंगी, उन आदमियों के पास, जिनका कि भीतर वाला बल, आत्मा का बल-जाग्रत और समर्थ होता है।

मित्रो! लक्ष्मण जी गये रावण के पास और कहने लगे कि हम आपसे राजनीति पढ़ना चाहते हैं और जीवन के विकास करने की कला को हम आपसे सीखना चाहते हैं? रावण चुप हो गया, कोई जवाब नहीं दिया। लक्ष्मण जी वापस रामचंद्र जी के पास

आये और कहने लगे कि रावण तो बड़ा घमंडी मालूम पड़ता है। कोई जवाब नहीं देता। शायद उसके मन में कोई दुश्मनी हो।

रामचंद्र जी ने कहा—नहीं बड़े आदमी किसी को दुश्मन नहीं मानते। लड़ाई जरूर करते हैं, पर उस लड़ाई को करने के साथ-साथ में यह बैर उनके भीतर नहीं आता। बड़े आदमियों की एक ही महत्ता है। बड़े आदमी को वक्त-वक्त पर लड़ाइयाँ लड़नी पड़ती हैं, पर वे द्वेष और दुश्मनी के लिए अपने जी में कोई गुंजाइश नहीं रखते। रावण से हमारी लड़ाई हुई जरूर और रावण को हमने मारा जरूर, लेकिन रावण हमारे प्रति दुश्मनी रखे, यह नामुमकिन है। तुमको मालूम नहीं है कि जब हम समुद्र पाटने के लिए गए थे, तब हमने शिवलिंग की स्थापना की थी। हमको एक पुरोहित की जरूरत थी। पुरोहित की हमने तलाश की, पर कहीं नहीं मिला, तो हमने लंका में खबर भेजी कि रावण हमारे पुरोहित का कार्य करे। शिवलिंग की स्थापना कराये और आकर के हमको आशीर्वाद दे तब क्या रावण नहीं आया था?

मित्रो! लक्ष्मण ने कहा—हाँ, रावण तो आया था। तब उसने हमको आशीर्वाद नहीं दिया था? हाँ, दिया था। हमने कहा था कि हमारी कामना यह है कि हम लंका पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं। समुद्र पर पुल बनाना चाहते हैं और रावण को मारना चाहते हैं। हे हमारे पुरोहित! हमें आशीर्वाद देकर के जाओ, तो रावण ने क्या यह आशीर्वाद नहीं दिया था और कहा था- कि जाओ मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम समुद्र पर पुल बनाओ, लंका पर विजय प्राप्त करो, रावण को मारो। रावण दुश्मनी नहीं मानता। दुश्मनी तो बहुत छोटे और कमीने लोग मानते हैं।

रामचंद्र जी ने कहा—गुमराह था तो क्या? लेकिन रावण अपने आप में जबर्दस्त और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था। आत्मशक्ति तो थी उसमें, पर परमात्मा से योग न होने के कारण वह भौतिक शक्तियों से उलझ गया। अब उसके पास जाना चाहिए और उससे यह सीखना चाहिए कि इतनी बड़ी संपदा, जो कोई इंजीनियर नहीं कमा सकता। जो कोई डॉक्टर नहीं कमा सकता, जो केवल बाह्य जगत में घूमने वाला, किसी खान को तलाश करने वाला आदमी नहीं कमा सकता। वह रावण ने अपनी जुबान और कुव्वत के द्वारा कैसे कमा ली? ये विधियाँ हम सीखकर तो आयें। लक्ष्मण जी गये और वे सब बातें सुनकर के वापस आये। मित्रो! दुनिया की दौलत, समृद्धि, ऋद्धि-सिद्धि का खजाना अपने ही भीतर भरा पड़ा है। इसे हम आध्यात्मिकता के आधार पर, अंतःकरण की पवित्रता और निष्कलुषता के आधार पर प्राप्त कर सकते हैं।

आज की बात समाप्त

॥ ॐ शांतिः॥

❑

एक बार महाराजा पुरंजय ने राजसूय यज्ञ का आयोजन किया। इसमें उन्होंने दूर-दूर से ऋषि-मुनियों को आमंत्रित किया। प्रजा की सुख-समृद्धि के उद्देश्य से आयोजित यज्ञ में विधि-विधान से आहुतियाँ दी जाने लगीं। यज्ञ की पूर्णाहुति का दिन आया। महाराज, महारानी, राजकुमार सभी यज्ञमंडप में विराजमान थे। वेद मंत्रों की ध्वनि से वातावरण गुंजित हो रहा था। अचानक एक किसान के रोने की आवाज सुनायी दी। वह रोते हुए कह रहा था, दस्युओं ने मेरी संपत्ति लूट ली। मेरी गाय छीनकर ले गये। दस्यु अभी कुछ ही दूर गये होंगे। राजा तुरंत उनको पकड़कर मेरी संपत्ति दिलाएँ। पंडितों ने कहा- इस व्यक्ति को दूर ले जाओ। यदि राजा इस पर दया करके पूर्णाहुति किये बिना उठ गये, तो देवता कुपित हो उठेंगे; लेकिन राजा किसान का रुदन सुनकर करुणार्द्र हो उठे और बोले—मेरा पहला कर्त्तव्य अपनी प्रजा का संकट दूर करना है। मैंने अनेक यज्ञ पूर्ण किये हैं। आज मैं पहली बार यज्ञ पूर्ण किये बिना अपने राज्य के किसान का संकट दूर करने जा रहा हूँ। उनके यह कहने पर साक्षात् यज्ञ भगवान प्रकट हुए और बोले- राजन्! तुहें कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। यह तुहारी परीक्षा थी कि तुम अपनी प्रजा के प्रति कर्त्तव्य का पालन करते हो या नहीं। अब आपको सौ राजसूय यज्ञों का फल मिलेगा।

आपदा के क्षणों में प्रेरणा का स्रोत बना विश्वविद्यालय

राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय फलकों पर अनेकों विलक्षण एवं प्रेरणास्पद कीर्तिमानों को स्थापित करने के साथ विगत शैक्षणिक सत्र की शुरुआत, देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा की गयी। अनेकों अभूतपूर्व उपलब्धियों को अर्जित करता हुआ विश्वविद्यालय का सफर मार्च माह तक अनवरत चलता रहा। दुर्भाग्यवश मार्च माह के प्रारंभ होते ही संपूर्ण विश्व पर कोविड-19 यानि कोरोना वायरस द्वारा फैलायी गयी गंभीर बीमारी का अंधकार चारों ओर फैलने लगा।

मार्च माह के मध्यकाल तक भारत सरकार द्वारा समस्त शैक्षणिक संस्थानों को यह निर्देश प्रदान कर दिए गए थे कि शैक्षणिक संस्थानों को अनिश्चितकाल के लिए बंद कर दिया जाए। प्रशासन एवं वैश्विक संगठनों द्वारा प्रदत्त इन निर्देशों का गंभीरतापूर्वक पालन करते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने भी अपनी शैक्षणिक एवं गैरशैक्षणिक गतिविधियों को मार्च के मध्य से बंद किया और बंद करने के साथ ही यह भी सुनिश्चित किया कि विश्वविद्यालय के समस्त विद्यार्थी सुरक्षित अपने-अपने घरों तक पहुँच जाएँ।

एक ऐसी अवधि में जब शैक्षणिक और गैरशैक्षणिक गतिविधियाँ पूर्णरूपेण बंद थीं एवं समस्त परिसर को आवागमन की दृष्टि से पूर्णरूपेण बंद कर दिया गया था तब देव संस्कृति विश्वविद्यालय के सदस्यों ने हतोत्साहित होने के स्थान पर अत्यंत प्रेरक गतिविधियों को जन्म दिया। विद्यार्थियों के शैक्षणिक विकास के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को स्पष्ट करते हुए सारे सदस्यों ने एकजुट होकर ऑनलाईन प्लेटफॉर्मों के माध्यम से शेष शिक्षा को पूरा कराने का कार्य आरंभ कर दिया।

प्रारंभ में विश्वविद्यालय के आचार्य-आचार्याओं द्वारा दिए जा रहे उद्बोधनों को मात्र विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों तक ही सीमित रखने की योजना थी, परंतु उनकी गुणवत्ता इतनी उत्कृष्ट थी कि उन उद्बोधनों की माँग संपूर्ण भारत एवं विश्व से उठने लगी और परिणामस्वरूप देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने एक यूट्यूब चैनल, एक ऑनलाईन एजुकेशन चैनल, एक वेबिनार प्लेटफॉर्म का निर्माण किया जिसके फलस्वरूप देश-विदेश के हजारों सदस्यों ने विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त शिक्षा को ग्रहण किया।

इसके साथ ही देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा इस कठिनाई एवं आपदा के समय में जरूरतमंदों की सहायता के लिए अनेकों ऐसे उपक्रम चलाए गए, जिनकी भूरि-भूरि प्रशंसा हरिद्वार एवं देहरादून प्रशासनों ने की। विश्वविद्यालय के माध्यम से नित्य प्रति सैंकड़ों भोजन के पैकेट बनाकर जरूरतमंदों तक पहुँचाए गए। विश्वविद्यालय के सृजना विभाग द्वारा पुराने कपड़ों से बनाए गए मास्क एवं विश्वविद्यालय के ग्राम प्रबंधन विभाग द्वारा बनाए गए सैनिटाईजर को भी भरपूर मात्रा में उन लोगों को उपलब्ध कराया गया जिनके पास इनकी सर्वाधिक आवश्यकता थी।

इसके साथ विश्वविद्यालय के आयुर्वेद एवं समग्र स्वास्थ्य प्रबंधन विभाग द्वारा आई.आई.टी. दिल्ली, नागपुर मेडिकल कॉलेज एवं अन्य कई संगठनों के साथ मिलकर भारत सरकार को कोविड-19 से जूझने के लिए एक महत्त्वपूर्ण शोध प्रस्ताव भेजा गया, जिसे भारत सरकार ने विशेषज्ञों की समिति के समुख प्रस्तुत करने के लिए स्वीकृत भी कर लिया।

आपदा के इन क्षणों में देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा ऐसी हवन सामग्री बनाने का निर्णय भी किया गया जिसके माध्यम से संक्रमणजन्य व्याधियों को नष्ट करने में सहायता मिलती है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान किए गए सम्मिश्रण के आधार पर आई.आई.टी. रुड़की द्वारा ऐसे यूमिगेशन चैबर के निर्माण का कार्य चल रहा था जिसके माध्यम से सभी आवश्यक उपकरणों को कीटाणुमुक्त करने का कार्य किया जा सके। यह अपने आप में अत्यंत ही प्रेरक एवं उत्साहजनक परिणाम था कि आपदा के क्षणों में किंकर्तव्यविमूढ़ होने के स्थान पर विश्वविद्यालय ने एक प्रकाशस्तंभ के रूप में अनेकों को दिशा प्रदान की। ❑

सद्ज्ञान में प्रतिष्ठित करता है सद्गुरु

हमारे जीवन में कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं, जिन्हें हम ऐतिहासिक कह सकते हैं, महत्त्वपूर्ण कह सकते हैं एवं जीवन परिवर्तन का उद्घोष कह सकते हैं। गुरु के साथ स्थापित होने वाला संबंध एक ऐसे ही ऐतिहासिक क्षण के रूप में गिना जा सकता है। बाह्य दृष्टि से तो उस क्षण में, जिस क्षण हम पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी से जुड़े, तब कुछ विशिष्ट नहीं घटा पर सूक्ष्म जगत में एवं अंतरंग की दृष्टि से वह क्षण एक अभूतपूर्व क्रान्ति का आधार बन गया है।

ऐसा कहने के पीछे का कारण यह है कि जिस दिन गुरु के साथ, विशेष रूप से सद्गुरु के साथ शिष्य का सबन्ध स्थापित होता है, उस दिन शिष्य के व्यक्तित्व का प्रत्येक अंश, उसकी चेतना का एक-एक हिस्सा गुरु को, महानता को एवं दिव्यता को समर्पित हो जाता है और उसके बदले में शिष्य, उन सभी विभूतियों का हकदार बन जाता है, जिन्हें गुरु-शिष्य संबंधों का आधार माना जा सकता है।

गुरु जीवन को प्रेरित करता है और सद्गुरु ज्ञान में प्रतिष्ठित करता है। इस कारण आषाढ़ पूर्णिमा को गुरु पूर्णिमा का पर्व मनाया जाता है। हिंदू धर्म में प्रचलित अन्य सभी त्यौहारों की अपेक्षा इसका महत्त्व अधिक माना गया है, क्योंकि सन्मार्ग के प्रेरक सभी व्रतों, पर्वों, त्योहारों का लाभ तभी उठाया जा सकता है, जब सद्गुरुओं द्वारा उनकी उपयोगिता एवं आवश्यकता सर्वसाधारण को अनुभव कराई जा सके। सद्गुरु की महिमा गाते-गाते शास्त्रकार थकते नहीं हैं। मनीषियों ने निरंतर यही कहा है कि आत्मिक प्रगति के लिए गुरु की सहायता आवश्यक है। इसके बिना आत्मकल्याण का द्वार खुलता नहीं और न ही साधना सफल होती है। सामान्य जीवन क्रम में माता, पिता और गुरु को देवता माना गया है और उनकी अयर्थना निरंतर करते रहने का निर्देश दिया गया है।

सामान्य अर्थ में शिक्षक को गुरु कहते हैं। साक्षरता का अभ्यास कराने वाले, शिल्प, उद्योग, कला, व्यायाम आदि कलाकौशलों की शिक्षा देने वाले गुरु ही होते हैं। तीर्थगुरु, ग्रामगुरु कितने ही नियमित वर्ग भी बन गए हैं। असाधारण चातुर्य में प्रवीण व्यक्ति को भी व्यंग्य में गुरु कहते हैं, जिसका वास्तविक अर्थ होता है हरफनमौला, तिकड़मी या धूर्त। कितने ही धर्म की आड़ में चेली-चेला बनाने का व्यवसाय इसी परंपरा के आधार पर चलाते हैं।

अनेकों लोग योग्य-अयोग्य का विचार किए बिना इन तथाकथित गुरुओं को नमन करते हुए भेंट-पूजा करते रहते हैं परन्तु जिस सद्गुरु के माहात्म्य का वर्णन शास्त्रकारों ने किया है, वह वस्तुतः मानवीय अन्तःकरण ही है। निरंतर सद्शिक्षण और ऊर्ध्वगमन का प्रकाश दे सकना इसी गुरुतत्व के लिए संभव है। बाहर के गुरु, शिष्य की वास्तविक मनःस्थिति का बहुत ही स्वल्प परिचय प्राप्त कर सकते हैं। अतः उनके परामर्श भी अधूरे ही रहेंगे फिर कोई बाहरी गुरु हर समय शिष्य के साथ रह भी नहीं सकता, जबकि उसके सामने निरूपण और निराकरण के लिए अगणित समस्याऐं पग-पग पर, क्षण-क्षण में प्रस्तुत होती रहती हैं। इनमें से किसका, किस प्रकार समाधान किया जाए, इसका मार्गदर्शन करने के लिए व्यक्ति विशेष पर, तब तक निर्भर नहीं रहा जा सकता, जब तक वह परमपूज्य गुरुदेव या परम वंदनीया माताजी के स्तर का न हो।

अपने अन्तःकरण को निरन्तर कुचलते रहने, उसकी पुकार को अनसुनी करते रहने से आत्मा की आवाज मंद पड़ जाती है। पग-पग पर अत्यन्त आवश्यक और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकाश देते रहने का उसका क्रम शिथिल हो जाता है, अन्यथा सजीव आत्मा की प्रेरणा सामान्य स्थिति में इतनी प्रखर होती है कि कुमार्ग का अनुसरण कर सकना मनुष्य के लिए संभव ही नहीं हो। सद्गुरु के सशरीर सान्निध्य के अभाव में यह आत्मिक प्रखरता ही वस्तुतः सद्गुरु है। इसी का नमन-पूजन और परिपोषण करना गुरु-भक्ति का यथार्थ स्वरूप है।

गुरुदीक्षा इस व्रत धारण का नाम है कि हम अन्तरात्मा की प्रेरणा का अनुसरण करेंगे। ऐसा निश्चय करने वाला व्यक्ति मानवोचित चिन्तन और कर्त्तव्य से विरत कभी नहीं हो सकता है। जैसे ही अचिन्त्य चिन्तन मनःक्षेत्र में उभरता है, वैसे ही प्रतिरोधी देव तत्व उसके दुष्परिणाम के संबंध में शिष्य को सचेत करते हैं और भीतर ही भीतर एक अंतर्द्वंद्व उभरता है। अनैतिक और निकृष्ट स्तर का कोई विचार ऐसे मस्तिष्क में देर तक अपने पैर नहीं जमा सकता, जिसका संरक्षण आन्तरिक सद्गुरु सतर्कतापूर्वक कर रहा है। सद्विचारों की रक्षा पंक्ति को भेदकर मानवीय चेतना पर दुर्विचारों का आधिपत्य जम सकना तभी संभव होता है, जब अन्तरात्मा मूर्छित या मृतक स्थिति में पहुँचा दी गई हो।

कुकर्म करते समय, शरीरगत दिव्य चेतना का विद्रोह देखते ही बनता है। पैर काँपते हैं, दिल धड़कता है, गला सूखता है, सिर चकराता है तथा और भी न जाने क्या-क्या होता है। ध्यानपूर्वक देखने से कुकर्म के लिए कदम बढ़ाते समय की आंतरिक स्थिति ऐसी होती है, मानो किसी निरीह पशु का वध करने के लिए जाते समय कातर स्थिति में देखा जा रहा हो। सामान्य व्यक्तियों में अधिकांश की आंतरिक स्थिति ऐसी हो जाती है कि वे उस अवांछनीय कार्य को पूरा कर ही नहीं पाते, अधूरा छोड़कर अथवा असफल होकर वापस लौट आते हैं। वस्तुतः यह पराजय, यह असफलता उस अंतर्द्वंद्व से ही उत्पन्न होती है, जो कुकृत्य न करने के पक्ष में प्रबल प्रतिपादन कर रहा था।

'सद्गुरु डूबते को उबारते हैं' वाली उक्ति ऐसे ही अवसरों पर सर्वथा लागू होती है। अतः सद्गुरु की उपस्थिति के अभाव में अन्तःकरण का कहा करना अधिक उचित बैठता है। अतः अपने अंतःकरण को परिष्कृत-परिमार्जित करके उस शुद्ध हुई अन्तरात्मा की आवाज पर ध्यान देना चाहिए। गुरु पूर्णिमा के पवित्र अवसर पर चलिए, हम स्वयं को पवित्र करने और अपने अंदर के गुरु से मार्गदर्शन लेना प्रारंभ करते हैं। सद्गुरु हमारे जीवन में सद्ज्ञान का अमृत घोलता है। वही परमात्मा का परमानन्द का स्वाद प्रदान करता है। अतः सद्गुरु को सदा नमन करना चाहिए।

गुरु पूर्णिमा के अवसर पर हमें अपने गुरु-शिष्य संबंधों के मूल आधार, श्रद्धा को स्मरण करने की आवश्यकता है। ये याद करने की आवश्यकता है कि हमने अपनी श्रद्धा को एक ऐसे गुरु को समर्पित किया है, जिनका जीवन उत्कृष्टताओं एवं सत्प्रवृत्तियों की परिभाषा था। ऐसे महान् व्यक्तित्व के पदचिन्हों पर चलकर ही अपने इस जीवन को श्रेष्ठ व सार्थक बनाया जा सकता है। यह समर्पण सघन श्रद्धा के माध्यम से ही संभव है और यह समर्पण, सद्गुरु के प्रति ही संभव है। गुरु का अर्थ मार्गदर्शक सत्ता से है और यह कार्य वही कर सकता है, जिसे मार्ग की जानकारी हो। हम सौभाग्यशाली हैं कि हम एक ऐसे गुरु के शिष्य हैं। ❑

प्रसिद्ध भक्त नरसी मेहता जूनागढ़ में गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भक्ति करने में और दुखियों की सेवा करने में लीन रहते थे। एक दिन एक जाटवकुलोत्पन्न भक्त ने उनसे पूछा- 'क्या आप मेरे घर पधारकर उसे पवित्र कर सकते हैं?' वे बोले- 'क्यों नहीं, तुम तैयारी करो, मैं समय पर वहाँ पहुँचकर कीर्तन करूँगा।' समय पर नरसी मेहता हरिजन के घर पहुँचे। उन्होंने वहाँ तन्मय होकर कीर्तन किया और प्रसाद ग्रहण किया। नगर के कुछ रुढ़िवादी ब्राह्मणों को जब यह पता लगा, तो उन्होंने पंचायत करके नरसी मेहता को अंत्यज (जाटव) के घर कीर्तन करने के आरोप में जाति से बहिष्कृत कर दिया। नरसी मेहता ने उनसे कहा- 'भगवद्भक्तों की कोई जाति नहीं होती। जो भी एक साथ संकीर्तन करते हैं, वे सब एकाकार होकर एक जाति के हो जाते हैं। मुझे बहिष्कृत करके आपने मुझ पर उपकार ही किया है। अब मैं संपूर्ण भक्त समुदाय के साथ अहर्निश भक्ति कर सकूँगा।'

कविता

समझें हम संकेत समय का

देख-देख हर तरफ व्याप्त होती वैश्विक विपदाएँ,
समझें हम संकेत समय का, सावधान हो जाएँ।

जनप्रतिनिधि होकर भी जनहित हमने कभी न सोचा,
जितना संभव हुआ, स्वार्थ के लिए देश को नोचा,
कभी न सोचा, साथ हमारे भी क्या कुछ जाएगा,
अर्जित में से काम हमारे कितना आ पाएगा,
दोहराएँगे लोग हमारी कैसे कुटिल कथाएँ।
समझें हम संकेत समय का, सावधान हो जाएँ।

हमको इतनी यहाँ सुहाई थीं पश्चिमी हवाएँ,
बदल गई थीं बहुत तीव्रगति, वाणी वेश क्रियाएँ,
सड़कों तक पर फैल रही थीं यूँ उच्छृंखलताएँ,
बचा नहीं संकोच कहीं था, बचीं न मर्यादाएँ,
भूले थे अपनी संस्कृति की हम शालीन प्रथाएँ।
समझें हम संकेत समय का, सावधान हो जाएँ।

दुश्चिंतन ने कर्मो पर था ऐसा जाल बिछाया,
कहीं सुरक्षित रहा न कोई, अपना और पराया,
भोले शैशव में भी हमको सिर्फ वासना दीखी,
दंडित लोगों से भी हमने कोई बात न सीखी,
सहमी रहती थीं घर-घर की शिशु-किशोर कन्याएँ।
समझें हम संकेत समय का, सावधान हो जाएँ।

आज मिला है अवसर, हम सब अपनी ओर निहारें,
एकाकीपन में अपनी कमियों को हम स्वीकारें,
चिंतन में परिवर्तन लाएँ, बदलें जीवन शैली,
इस समाज में कहीं न दीखे, जिससे दृष्टि विषैली,
सर्व समर्थ विधाता पर हैं अनगिन दंड-विधाएँ।
समझें हम संकेत समय का, सावधान हो जाएँ।

- शचीन्द्र भटनागर

प्रशासन द्वारा निर्धारित मानकों एवं अनुशासन के पूर्ण परिपालन के साथ अत्यन्त श्रद्धासिक्त वातावरण में सोल्लास संपन्न गायत्री जयंती महापर्व

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-07-2019
Regd No. Mathura-025/2018-2020
Licensed to Post without Prepayment
No: Agra/WPP-08/2018-2020

GPYG KOLKATA
500TH
CONSECUTIVE SUNDAY TREE PLANTATION
31ST MAY 2020

गायत्री परिवार युवा मण्डल-कोलकाता द्वारा मनाए जा रहे 500 वें क्रमिक रविवासरीय वृक्षारोपण में शान्तिकुञ्ज-हरिद्वार से श्रद्धेय द्वय सहित शेष विश्व के पर्यावरण मित्रों की भावभरी भागीदारी

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष- 0565-2403940, 2400865, 2402574 मोबा.- 09927086291, 07534812037, 07534812036, 07534812038, 07534812039
फैक्स- 0565 2412273 ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org